श्रीवीतरागाय नमः।

कवि परिमल्लकृत-

श्रीपाल-चरित्र।

(नदीश्वरव्रतमाहात्म्य)

पद्यसे गद्यमें अनुवादक-

वर्णी दीपचन्दजी परवार,
नरसिंहपुर (C. P.) निवासी

प्रकाशकः-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया-सूरत।

तृतीयावृत्ति] वीर सं० २४४१. [प्रति १०००

मूल्य रु० ०-१४-०

प्रस्तावना ।

सं० १६९१ में आगरानिवासी विद्वान् कवि श्रीयुत **परिमल्लजीने "श्रीपाल-चरित्र"** ग्रंथ हिंदी पद्यमें रचा था, जिसकी हस्तलिखित प्रति लाहौरमें थी। उसको शुद्ध करके लाहौरनिवासी **बाबू ज्ञानचंद जैनीने** यह ग्रंथ ईस्वी सन् १९०४ में छपाकर प्रगट किया था; परन्तु इस ग्रंथकी प्रति खतम हो जाने और भाषा कठिन होनेके कारण हिंदी, गुजराती और मराठी, सभी पाठकोंके सुभीतेके लिये उसका गद्यमें सरल हिंदी अनुवाद हमने नरसिंहपुर (सी० पी०) निवासी **पंडित दीपचंदजी वर्णीसे** जो कि अभी उदासीन वृत्तिसे रहते हैं तीसरी वार तैयार करवाके तथा विशेष संशोधनके साथ बढ़ाकर फिरसे यह ग्रन्थ प्रकट किया है। हम पंडित दीपचंदजी वर्णीके बहुत आभारी हैं कि जिन्होंने हमें यह अनुवाद ऑनरेरी तौरपर तैयार कर दिया है। इसी तरह आप और भी अनेक ग्रंथोंका अनुवाद अवकाशके समयमें तैयार करते रहते हैं, यह आपके उच्च औदार्यका नमूना है। इस समय जैन जातिमें ऐसे ही निःस्वार्थी धर्मप्रेमियोंकी आवश्यकता है।

पहिली वार इसकी २००० प्रतियें प्रकट की गई थीं जिनमेंसे १७०० 'दिगम्बर जैन' के सप्तम वर्षके उपहारमें दी गई थीं, व शेष हाथोंहाथ बिक जानेसे दूसरीवार ६ वर्ष हुए ७०० प्रतियाँ प्रकट की थीं वे भी बिक जानेसे इसवार यह तीसरी आवृत्ति प्रकट की जाती है। वीर स० २४४९ चैत्र सुदी १९ ता० १-४-२३.

प्रकाशक।

विषयानुक्रम।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीपाल चरित्र ।

(श्रीनंदीश्वरव्रतमाहात्म्य)

मंगलाचरण ।

देव नमूं अर्हंत नित, वीतराग विज्ञान ।
जा प्रसाद भवि शिव लहैं, करैं कर्मकी हान ॥ १ ॥
विषयारम्भ रहित सदा, गुरु नमो निर्ग्रन्थ ।
काया जनको तिन कियो, सरल मोक्षको पंथ ॥ २ ॥
ओंकार वाणी नमूं, द्वादशांग उर धार ।
श्रीपाल चारित्रकी, करूं वचनिका सार ॥ ३ ॥

पंचपरमेष्ठि-स्तुति ।

कर्म घातिया नाशकर, लहो चतुष्क अनन्त ।
नमूं सकल परमात्मा, वीतराग अर्हन्त ॥ ४ ॥
नित्य निरंजन सिद्ध शिव, निराकार साकार ।
अमल निकल परमात्मा, नमूं त्रियोग सम्हार ॥ ५ ॥
दिक्षा शिक्षा देत जो, सकल संघके ईश ।
ऐसे सूर मुनीन्द्रको, नमूं कर धर शीश ॥ ६ ॥
द्वादशांग श्रुत निपुण जे, पढें पढावें धीर ।
ऐसे श्री उवझाय मुनि, वेग हरो भवपीर ॥ ७ ॥
विषयारम्भ निवारके, मोह कषाय विडार ।
तजो ग्रन्थ चौवीस जिन, साधु नमूं सुखकार ॥ ८ ॥
पंच परम पद मैं नमूं, मन वच तन सिरनाय ।
जा प्रसाद मंगल लहूं, कोटि विघ्न क्षय जांय ॥ ९ ॥

वर्तमानचौवीसी जिनस्तुति ।

नमों मैं प्रथम ऋषभ चरणां, दूजे अजित अजित रिपु जीते ध्याऊं अघ हरना ॥ तीजे संभव भवनाशे, चौथे अभिनंदन पद सेऊं कर्म नशैं जासे ॥ पंचम सुमति सुमति दाता, छट्ठे पद्मनाथ पद पंकज सेऊं लहूं साता ॥ सातवें श्री सुपार्श्वनाथा, अठें चन्द्रनाथ जिन चरणों नाऊं निज माथा ॥ नवमें पुष्पदंत संत, दशवें शीतलनाथ जिनेश्वर देत शर्म अनन्ता ॥ ग्यारवें श्रेयांसस्वामी, वासुपूज्य बारहवें ध्याऊ तीनलोकनामी ॥ तेरवें विमल विमल जानो, अनन्त चतुष्टय युत चौदहवें अनन्तनाथ मानो ॥ पंद्रवें धर्म शर्म करता, सोलहवें श्रीशान्तनाथ प्रभु भवाताप हरता ॥ सत्रवें कुंथुनाथस्वामी, अरहनाथ अरिगण वसुनाशक अठारवें नामी ॥ उनीसवें मल्लि मल्ल चूरे विंशतवें मुनिसुव्रतस्वामी व्रत अनत पूरे ॥ इक्कीसवें नमिनाथ देवा, बाइसवें श्रीनेमिनाथ शत इन्द्र करें सेवा ॥ तेइसवें पार्श्वनाथ ध्याऊं, चौविसवें श्रीवर्धमानकी भक्ति हिये भाऊं ॥ तीर्थंकर चौवीसों नामी, पंचकल्याणक धारी सब ही शिवपुर विसरामी । विनय यह दीपचंद केरी, जब लग मोक्ष मिले नहिं तब लग लहूं भक्ति तेरी ॥

यह विधि कर जिन स्तुति, भक्ति भाव उर लाय ।
कहूं वचनिका ग्रन्थकी, शारद करो सहाय ॥

ग्रंथ (चरित्र) का कारण ।

अनंत अलोकाकाशके ठीक मध्यभागमें असंख्यात प्रदेशी ३४३ घन राजू प्रमाण दोनों पग फैलाकर अपनी कमर पर हाथ

रक्खे खड़े हुवे मनुष्यके आकारका पूर्व पश्चिम नीचे सात राजू चौड़ा फिर क्रमसे घटता हुवा सात राजू उंचाई पर केवल एक ही राजू और यहांसे साढ़े तीन राजू उचाई तक क्रमसे बढ़ता हुवा ५ राजू होकर फिर क्रमसे घटते हुवे ऊपर साढ़े राजू जाकर एक राजू मात्र चौड़ा, और उत्तर दक्षिण सर्वत्र सात सात राजू ऊपरसे नीचे तक चौड़ा, तथा नीचेसे ऊपर तक कुल १४ राजूकी उंचाईवाला लोकाकाश है ॥

इसमें इतने ही (असंख्यात प्रदेश प्रमाण प्रदेशोंवाले) धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अखंड सर्वत्र व्याप्त हैं, इसके सिवाय लोकाकाश प्रमाण ही असंख्यात प्रदेशोंवाले, अनन्तानन्त जीव द्रव्य संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशों (परमाणुवों) के अनेकों स्कन्धों तथा परमाणु स्वरूप रूपी पुद्गल द्रव्य और लोक प्रमाण असंख्यात कालाणुवोंसे यह लोकाकाश खूब ठसाठस भर रहा है। इस लोकाकाशके मध्य (उत्तर दक्षिण दोनों ओर तीन तीन राजू छोड़कर) एक राजू लम्बी एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊंची त्रसनाड़ी है अर्थात् त्रस (दो, तीन, चार, और पांच इन्द्रीवाले) जीव केवल इतने ही क्षेत्रमें रहते हैं। परन्तु स्थावर (एकेन्द्री) सर्वत्र पाये जाते हैं ॥

लोकाकाशके ऊर्द्ध्व, मध्य और अधोलोक इस प्रकार तीन खंड कल्पना किये गये हैं। नीचेसे लेकर ऊपर सात राजू तक त्रसनाड़ी (अधोलोक)में क्रमसे सांतवां, छठवां, पांचवां, चौथा, तीसरा, दुसरा और पहिला नर्क तथा भवनवासी और व्यतर जातिके देवोंका निवास है। इसके ऊपर इसी पृथ्वी पर मनुष्य

वा तिर्यक् लोग (मध्य लोक) हैं। यहां पर मनुष्य और तिर्यंच तथा व्यंतर और ज्योतिषी देवोंका निवास है॥ इससे ऊपर सात राजु तक कल्प (स्वर्ग) वासी देव, इन्द्र तथा कल्पातीतों (अह-मिन्द्रों) का निवास है॥ और अंतमें सबसे ऊपर लोक शिखर पर समस्त कर्म-मल-कलकोंसे रहित, अनत ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यादि अनत गुणोंके धारी, नित्य निरजन अमुर्तीक अखंड अव्यावाध गुणोंके धारी, लोक पूज्य अनंते सिद्ध परमात्मा अपनी २ सुखसत्ता अवगाहना युक्त, शुद्ध फटिक मणिके समान निर्मल सिलापर स्वाधार तिष्टे हैं॥ उन सिद्ध भगवानको मेरा सर्वदा मन वचन कायसे अष्टाग नमस्कार होवे॥-

ऊपर कहे अनुसार त्रसनाड़ीके बीचोंबीच (ऊपर नीचे सात सात राजू छोडकर) जो मध्यलोक हैं। उसमें युक्ता संख्यात (संख्या प्रमाण) द्वीप और समुद्र हैं। जो एक दूसरेको चूड़ी की नाईं दूने दूने विस्तारवाले हैं। अर्थात सबसे मध्यमें नाभिके समान १ लाख योजन × २००० कोसके व्यासवाला थालीके आकार गोल जम्बूद्वीप है। इसके सब ओर गोल २ दो लाख योजन व्यासवाला (चौडा)लवण समुद्र, उसके सब और चार चार लाख योजन चौडा घातकीखण्ड द्वीप, इसके आसपास ८ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। इसके आसपास १६ योजन चौड़ा पुष्कर द्वीप है। (इस द्वीपमें ठीक बीचमें कोट की भींतके समान अत्यन्त ऊचा (मनुष्योंसे अनुलंध्य) मानषोत्तर पर्वत है इससे यह आधा द्वीप और घातुकी खंड तथा जम्बूद्वीप मिलकर अढ़ाई द्वीप ४५ लाख महां योजनके व्यासवाले हैं। इतना ही

मनुष्य लोक है। यहींसे जीव कर्मको नाश करके मुक्त हो सक्ते हैं॥ इसके सिवाय इसी प्रकार दूने २ विस्तारवाले समुद्र उसके आसपास द्वीप, उसके आसपास समुद्र, इस प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्र हैं और अंतका समुद्र स्वयंभूरमण है जो कि एकला आधेराजूके विस्तारवाला है। यह सब तिर्यक लोक है। अढाई द्वीपसे परे मनुष्योंका गमनागमन नहीं है। इस लिये यहांसे भूतकालमें हुवे तथा वर्तमान और भविष्यत कालमें होनेवाले समस्त सिद्धोंको हमारा नमस्कार होवे।

इस प्रकार इस नाभिके तुल्य मध्यवर्ती जम्बूद्वीपमें बीचोंबीच सुदर्शन मेरु पर्वत है और दक्षिण उत्तर छह कुलाचल पर्वत हैं उनसे सात क्षेत्र हो गए हैं, उन क्षेत्रोंमेंसे दक्षिण दिशामें धनुषाकार भरतक्षेत्र है। उसके बीचमें वेताढ्य पर्वत तथा महागंगा और सिंधुनदी बहनेसे प्राकृतिक छह भाग हो गए हैं, सो आसपास तथा ऊपर ५ मलेक्ष और दक्षिण भागमें आर्यखंड है। उसके मध्य मगध देशमें एक राजगृही नगरी है। यह नगरी अत्यन्त शोभायमान धन कणकर पूर्ण है। जहां बड़े २ विशाल मंदिर बने हुए हैं। बाग, वावड़ी आदि अति रमणीय मालूम होती हैं। यहांका राजा महामण्डलेश्वर श्रेणिक नामका था। राजा अति नीतिनिपुण, न्यायी, प्रजावत्सल, प्रतापी और धर्मात्मा था। इसके राज्यमें दीन दुखी पुरुष दृष्टिगत नहीं होते थे। इसकी मुख्य पट्टरानी चेलना बहुत ही धर्मपरायण और पतिव्रता थी। और वारिषेण, अभयकुमारादि बहुतसे गुणवान् पुत्र थे। तत्पर्य कि सब प्रकारसे राजा प्रजा पूर्व संचित

पुण्यका भोग करके भी आगेको पुण्योपार्जन करनेमें किसी प्रकार कमी नहीं करते थे अर्थात् दानधर्ममें भी पूर्ण योग देते थे।

एक समय जब राजा सभामें सिंहासनारूढ थे, उसीसमय **वनपाल** (माली) ने आकर छहों ऋतुके फलफूल लाकर राजाको भेंट किये और प्रार्थना की, कि हे स्वामी! **विपुलाचल पर्वतपर** चतुर्विंशतिवें तीर्थंकर श्री **महावीरस्वामी समवशरण** सहित आये हैं और जहांपर इन्द्र खगेन्द्र नरेन्द्र आदि सर्व ही दर्शनको आते हैं। ये सब फलफूल उनके ही प्रभावसे विना ऋतु आये ही फले और फूले हैं। चारों ओर कूप तड़ाग आदि जलाशय भरे हुए दृष्टिगोचर होते है। वनके सब जातिविरोधी जीव जैसे सिंह और बकरी, मूसा और बिलाव आदि परस्पर मैत्रीभावसे बैठे हैं। हे स्वामी! वहा दिनरातका भी कुछ भेद मालूम नहीं पडता है। ऐसी अद्भुत शोभा है, जिसका वर्णन होना कठिन है।

यह समाचार सुनकर राजाको अत्यन्त आनद हुवा और उसने तुरन्त अपने शरीरपरके वस्त्राभूषण उतार और वनमालीको देकर, आसनसे उठ **परोक्ष नमस्कार** कर नगरमें आनंदभेरी (मुनादी) दिवाई, कि सब नरनारी श्री **वीर भगवानके** दर्शनको पधारो। राजा स्वयं चतुरग सेना सहित हर्षका भरा चेलनादि रानियों सहित समवसरणमें बंदनार्थ गया। वहां जाकर प्रथम ही भगवान्‌को **अष्टांग नमस्कार** करके स्तुति करने लगा।

वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, निजानद गुणखान।
अनत चतुष्टयके धनी, नमू वीर भगवान॥

जय जय जिन राजें समवसरन । जय जय जन्म जरा भय हरन॥
जय जय उद्यत जोत जिनेश । जय जय मुक्तिवधू परमेश ॥
जय जय छयालीस गुण मंड । जय अतिशय चौंतीस प्रचंड ॥
तीन लोककी शोभा ताहि । और कोई उपमा नहीं आहि ॥
जय जय केवलज्ञान पयास । जय जय निर्नाशन भव त्रास ॥
जय सब दोष रहित जिनदेव । सुरनर असुर करें तुम सेव ॥
यह विधि जिनवर थुति करेय । वार तीन प्रदक्षिण देय ॥
विनवे श्रेणिक वारम्वार । भवदधिसे प्रभु कीजे पार ॥

तत्पश्चात् चतुर्विध सवकी यथायोग्य विनयकर मनुष्योंकी सभामें जाकर बैठ गया, और प्रभुकी वाणीसे दो प्रकार सागार और अनगार धर्मका स्वरूप सुनकर पूछने लगा, कि "हे प्रभु ! सिद्धचक्रव्रतकी विधि और फल क्या है ? और इसे स्वीकारकर किसने क्या फल पाया है ? सो कृपाकर कहिये, जिसे सुनकर भव्य जीव धर्ममें प्रवर्तें, और दुखसे छूटकर स्वाधीन सुखका अनुभवन करें"। तब **गौतमस्वामी** (जो प्रथम गणधर=गणेश थे) बोले-" हे राजा ! इसकी कथा इस प्रकार है, सो मन लगाकर सुनो । "
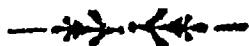
(१) अंगदेश चंपापुरका वर्णन ।

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें जो आर्यखंड है, उसके मध्य एक अंगदेश नामका देश है और उसमें चंपापुर नामका एक नगर है । इसी नगरके समीपी उद्यानसे श्री **वासुपूज्यस्वामी** बारहवें तीर्थंकर निर्वाण पधारे हैं । यह नगरी अत्यन्त रमणीक

है। चारों ओर वन उपवनोंसे सुशोभित है। इन वनोंमें अनेक प्रकारके वृक्ष अपनी स्वाभाविक हरियाली लिये पवनके झकोरोंसे हिल रहे हैं। मंदसुगंध वायु बहा करती है। कहींपर कल्लोलें करते हुवे नदी नाले बहते हैं। जिनमें अनेक भातिके जलचर जीव क्रीडा कर रहे हैं। वृक्षोंपर पक्षी अपने २ घोसलोंमें बैठे नाना प्रकारकी किलोलें कर रहे हैं! वे कभी फड़कते, कभी लटककर चुहचुहाते हैं। बन्दर आदि वनचर जीव एक वृक्षसे दूसरे और दूसरेसे तीसरेपर प्रमुदित हुवे कूद रहे हैं। घास चारों ओर लहरा रही है। वनवेलोंकी तो कहना ही क्या है? जिस प्रकार लज्जावती स्त्रीके चहु ओर वस्त्र आच्छादित रहते हैं और उसका बदन (शरीर) रूप रंग कोई नहीं देख सक्ता है, उसी प्रकार उन्होंने वृक्षोंको चारों ओरसे ढाक लिया है। कहीं हाथियोंके समूह अपनी मस्त चालसे विचर रहे हैं, तो कहीं मृग बिचारे सिंहादि शिकारी जानवरोंके भयसे यहां वहां दौड़ते फिर रहे हैं, कहीं सिंह चिंघाड रहे हैं। कहीं पुष्पवाटिकाओंमें नाना प्रकारके फूल, जैसे चंपा, चमेली, जुही, मचकुंद, मोगरा मालती, गुलाब आदि खिल रहे हैं, जिनपर सुगन्धके लोभी भौंरा गुंजार कर रहे हैं, कहींपर बगीचोंमें नाना प्रकारके फल जैसे आम, जाम, सीताफल, रामफल, श्रीफल, केला, दाड़िम, जामुन आदि लग रहे हैं। जल कुंडोंमें मछलियें किलोलें कर रही हैं, सरोवरोंमें अनेक भांतिके कमल फूल रहे हैं, तथा सारस व हंस आदि पक्षी क्रीड़ा करते हैं, वहीं हंसोंकी चाल देख बगुला भी उन्हींसे मिलना चाहता है; परन्तु कपट भेष होनेके कारण छिप नहीं सक्ता है। इत्यादि अवर्णनीय शोभा है।

उस नगरमें बड़े बडे उत्तंग गगनचुंबी महल बने हैं, और प्रत्येक महल जिन चैत्यालयोंसे शोभायमान है, चौगड़के समान बाजार बने हुवे हैं, जिनमें हीरा, रत्न, माणिक, पन्ना, नीलम, पुखराज आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थोंका वाणिज्य होता है। कहीं कपडेकी गाठे दृष्टिगत हो रही हैं, तो कहीं विसातखाना चल रहा है, कहीं फल फूल मेवोंका और कहीं अनाजका ढेर है, इस प्रकार बाजार भर रहे हैं। इस नगरमें बड़ेबड़े विद्वान्, पंडित कवि आदिका निवास है, कहीं वेदध्वनि होती है, कहीं शास्त्र संवाद चल रहा है, कहीं पुराणी पुराणका कथन करते हैं, कई विद्यार्थी पाठशालामें अध्ययन करते हैं, मानो यह विद्यापुरं ही है, जहां ईतभीत पुरुष देखनेमें ही नहीं आते हैं। चारा वर्णके मनुष्य जहां अपने २ कुलाचारको पालन करते हैं। सभी लोग प्राय: सुखी दृष्टिगत होते हैं, भिक्षुक सिवाय परम दिगम्बर मुद्रायुक्त अयाचीक वृत्तिके धारी मुनियोंके कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होते। जहां सदैव परम दिगम्बर मुनियोंका विहार होता रहता है और श्रावकगण मुनियोंके आनेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। अपने निमित्त तैयार की हुई रसोईमेंसे नवधाभक्तिपूर्वक आहार-दान कर पीछे आप भोजन करते हैं। वे सब द्विजवर्णके श्रावक दातारके सप्त गुणोंके धारक और श्रावककी क्रियामें अति निपुण हैं, इस प्रकार यह चंपापुरीकी ऐसी शोभा है, मानों स्वर्गपुरी ही उतर आई है।

(२) श्रीपालके गर्भका वर्णन ।

इसी चंपापुर नगरमें नरभूषण महाराजा **अरिदमन** राज्य करते थे इनके छोटे भाईका नाम **वीरदमन** था । इनका राज्य नीतिपूर्वक चारों ओर व्याप रहा था । कहीं भी किसी तरहका कोई कंटक दिखाई नहीं देता था । हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, प्यादे आदि सेना बहुतायतसे थी । बड़े बड़े शूरवीर दरबारमें सदा उपस्थित रहते थे । दूरदूर तक सब ओर इनके राज्य नीतिकी प्रशंसा सुनाई देती थी । इनकी रानी **कुंदप्रभा** कुंदके पुष्पके समान अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी, शील-धर्ममें सीतासे कम न थी । जिस प्रकार कामको रति, शशिको रोहिणी, विष्णुको लक्ष्मी और रामको सीता प्यारी थी, उसी प्रकार यह रानी भी अपने पतिको प्रिय थी । पतिके सुखको सुख और उसके दुःखको दु ख समझती थी । ऐसी पतिभक्ता स्त्रियोंकी ही संसारमें महिमा है; क्योंकि जो ऐसी कोई २ सच्चरित्रा स्त्री न होती, तो यथार्थमें स्त्री जाति आदर योग्य भी नहीं रहती । एक दिन यह रानी जब सुखशय्यापर सोई थी, तब उसने रात्रिके पिछले पहरको स्वप्नमें सुवर्ण सरीखा बहुत बडा पर्वत और कल्पवृक्ष देखे, और इसी समय स्वर्गसे एक देव चयकर रानीके गर्भमें आया । इतनेमें प्रातःकाल हुवा, और दिनकरके प्रतापसे अंधकारका इस प्रकार नाश हो गया, जैसे सम्यक्त्वके प्रभावसे मिथ्यात्वका नाश हो जाता है । तब वह कोमलांगी सुशीला रानी शय्यासे उठी और अपने शरीरादिकी नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर मंद गतिसे गमन करती हुई स्वपतिके

समीप गई, और विनयपूर्वक नमस्कार कर मधुर शब्दोंमें रात्रिको देखे हुवे स्वप्नका सब समाचार सुनाने लगी। राजाने भी रानीको उचित सम्मान पूर्वक अपने निकट अर्ध सिंहासनपर स्थान दिया, और स्वप्नका वृत्तान्त सुनकर कहा—"हे प्राणवल्लभे! तेरे इस स्वप्नका फल अति उत्तम है अर्थात् आज तेरे गर्भमें महातेजस्वी, धीर वीर, सकलगुणनिधान, **चरमशरीरी नररत्न आया है।** **पर्वत** देखा, इसका फल यह है कि तेरा पुत्र **बडा गंभीर** साहसी, पराक्रमी और बलवान होगा, तथा उसका सुवर्ण सरीखा वर्ण होवेगा, और **कल्पवृक्ष** देखा है इससे वह बहुत ही उदारचित्त, दानी, दीनजनप्रतिपालक और धर्मज्ञ होगा। तात्पर्य—तेरे गर्भसे सर्वगुणसम्पन्न मोक्षगामी पुत्ररत्न होगा। इस प्रकार दम्पति (राजारानी) स्वप्नका फल जानकर बहुत ही प्रफुल्लित हुए, और सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे॥

---

(३) श्रीपालके जन्मका वर्णन।

द्वितीयजके चन्द्रके समान गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा और बाह्य चिन्ह भी प्रगट होने लगे, शरीर कुछ पीलासा दिखने लगा, कुच उन्नतरूप और दुग्धपूरित हो गये, नेत्र हरे२ हो गये, और दिनोंदिन रानीको शुभ कामना (दोहला-इच्छा) यें उत्पन्न होने लगीं॥ इस प्रकार आनन्दपूर्वक दश मास पूर्ण होनेपर जिस प्रकार पूर्व दिशासे सूर्यका उदय होता है, उसी प्रकार रानी **कुन्दप्रभाके गर्भसे शुभ लग्नमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई।** जन्मते ही दुर्जन पुरुषों व शत्रुओंके घर उत्पात होने लगे, और

स्वजन, सज्जन, पुरजनोंके आनंदकी सीमा न रही। घरोंघर नगरमें आनन्द वधाईयां होने लगीं, स्त्रियां मंगल गान करने लगीं, याचकों [भीखारी] को इतना दान दिया गया, कि जिससे वे सदैवके लिये अयाचक होगये। किसीको हाथी, किसीको घोडे, किसीको रथ, किसीको ग्राम, क्षेत्र आदि जागीरें भी पारितोषकमें दी गई। नगरमें जहांतहां वादित्रोंकी ध्वनि सुनाई देती थी॥ तात्पर्य-राजाने पुत्रजन्मका बडा हर्ष मनाया, और यह सब धर्महीका फल है ऐसा जानकर श्रीजिनेन्द्रदेवकी विधिपूर्वक पूजाभक्ति की।

इस प्रकार जब बालक एक मासका हुआ; तब राजा-रानी बडे उत्साहसे समारोहपूर्वक बालकको लेकर श्री जिन मंदिरको गये, और प्रथम ही भगवान्‌की अष्ट द्रव्यसे पूजा कर, पीछे वहां तिष्टे हुवे श्रीगुरुके चरणारविंदोंमें बालकको रख कर, विनयपूर्वक नमस्कार किया; तब मुनिराजने जिनको, कि शत्रु-मित्र समान हैं, उनको धर्मवृद्धि देकर धर्मोपदेश दिया सो दम्पतिने ध्यानपूर्वक सुना, और अपना धन्यभाग्य समझकर मुनिको नमस्कार करके घरको लौट आये। और निमित्तज्ञानीको बुलाकर बालकके गृहलक्षण और नाम आदि पूछा। तब निमित्तज्ञानीने जन्म लग्न परसे विचार कर कहा कि-" हे राजा! आपका पुत्र बहुत ही गुणवान्, पराक्रमी, कर्मशत्रुओंको जीतनेवाला प्रबल, प्रतापी, शूरवीर, रणधीर और अनेक विद्याओंका स्वामी होगा। इसके जन्म लग्नमें ग्रह बहुत अच्छे पड़े है। मै इस बालकके गुणोंको वचनद्वारा नहीं कह सकता, इसका नाम श्रीपाल रखना चाहिये।"

जब राजाने इस प्रकार बालकके शुभ लक्षण सुने तब आनंद और भी बढ़ गया। निमित्तज्ञानीको अतुल सम्पत्ति दे विदा किया, और बड़े प्यारसे पुत्रका लालनपालन करने लगे। अब दिनोंदिन श्रीपाल कुमार द्वितीयाके चन्द्रमा समान वृद्धिको प्राप्त होने लगे। इनकी बालक्रीड़ा मनुष्योंके मनको हरनेवाली थी। कभी ये औंधे होकर पेटके बलसे रेंगते, कभी घुटनेके बल चलते, कभी कुदक कुदक कर पैर उठाते, कभी संकेत करते, और कभी अपनी तोतली बोली बोलते थे। कभी मातासे रूस कर दूर हो जाते थे, और कभी दौड़कर पावोंसे लिपट जाते थे। वे संगके बालकोंमें ऐसे मालूम होते, जैसे तारागणोंमें चन्द्रमा शोभा देता है। इस प्रकारकी क्रीड़ाको देखकर माता पिताका मन प्रफुल्लित होता था **"बालककी सुन तोतरी बाता, होत मुदित मन पितु अरु माता"** इस तरह जब श्रीपालजी आठ वर्षके हुए; तब इनका मूंजीबन्धन तथा उपनयन संस्कार किया गया, अर्थात् जनेऊ पहिनाकर पंचाणुव्रत दिये गये, अष्ट श्रावकके मूलगुण धारण कराये, सप्त व्यसनका त्याग कराया, और यावत् विद्याध्ययन काल पूर्ण न हो वहां तकके लिये अखंड ब्रह्मचर्यव्रत दिया गया।

इस प्रकार यथोक्त मंत्रोंद्वारा विधिपूर्वक पूजन हवनादि करके इनको गृहस्थाचार्यके पास पढ़नेके लिये भेज दिया। सो गुरुने प्रथम ही ॐकारसे पाठ आरंभ कराकर थोड़े ही दिनोंमें श्रीपालकुमारको तर्क, छंद, व्याकरण, गणित, सामुद्रिक, रसायन, गायन, ज्योतिष, धनुषबाण (शस्त्रविद्या), पानीमें तैरना, वैद्यक, कोकशास्त्र, वाहन, नृत्य आदि विद्या और सम्पूर्ण कलाओंमें निपुण कर

दिया। तथा आगम और अध्यात्म विद्यायें भी पढ़ाईं। इस प्रकार श्रीपालजी समस्त विद्याओंमें निपुण होकर गुरुकी आज्ञा ले अपने मातापिताके समीप आये और उनको विनयपूर्वक नमस्कार किया। मातापिताने भी पुत्रको विद्यालंकृत जानकर शुभाशीर्वाद दिया। अब श्रीपाल कुमार नित्यप्रति राज्यसभामें जाने और राज्यके कामोंपर विचार करने लगे।

---

(४) श्रीपालका राजतिलक और राजा अरिदमनका कालवश होना।

एक समय राजा अरिदमन सभामें बैठे थे, कि इतनेमें श्रीपालकुमार भी सभामें आये, और योग्य विनयकर यथास्थान बैठ गये। उस समय राजाने अपनी वृद्धावस्था और श्रीपालकुमारकी सुयोग्यता देखकर, तथा इनके अतुल पराक्रम, न्यायशीलता, और शूरवीरतादि गुणोंसे प्रसन्न होकर इनको राजतिलक देनेका निश्चय कर लिया। और शुभ मुहूर्तमें सब राजभार इनको सौंपकर आप एकांतवास करने तथा धर्मध्यानमें कालक्षेप करने लगे। थोडे ही समय बाद वृद्ध राजा अरिदमन कालवश हुए। जिससे राजा श्रीपाल, इनके काका वीरदमन, तथा माता कुंदप्रभादि समस्त स्वजन तथा पुरजन शोकसागरमें डूब गये। चारों ओर हाहाकार मच गया, तब बुद्धिमान राजा श्रीपालने सबको अत्यन्त शोकित देख धैर्य (साहस) धारण कर सबको संसारकी दशा और जीव-कर्मका सम्बन्ध इत्यादि समझा कर संतोष दिलाया और अपने पिताकी मृत्यु सम्बन्धी क्रिया करचुकनेके

अनन्तर पुनः राज्यकार्यमें दत्तचित्त हुए। चारों दिशाओंमें अपनी बुद्धिबल तथा पराक्रमसे कीर्ति विस्तृत कर दी, बड़े २ राजाओंको अपने आज्ञाकारी बनाये, दुर्जनोंको जीत कर वश किये, प्रजाको चौरादि दुष्टजनों कृत उपसर्गोंसे सुरक्षित किया। इनके राज्यमें लुच्चे, चोर, लवार, चुगलखोर, व्यभिचारी, हिंसक आदि जीव क्वचित् ही दृष्टिगोचर होते थे। सब लोग अपने २ धर्ममें आरूढ़ मालूम होते थे। राजाज्ञा पालन करना उनके मुख्य कर्तव्योंमेंसे एक था। इस तरह नीतिपूर्वक इनका राज्य बहुत काल तक निष्कंटक चला।

---

(५) श्रीपालको कुष्ट व्याधिका होना।

जिस समय श्रीपालजी सुखपूर्वक कालक्षेप कर रहे थे और प्रजाका न्याय तथा नीतिपूर्वक पालन करते थे, उस समय उनका यह ऐश्वर्य दुष्टकर्मसे सहन नहीं हुआ, अर्थात् कामदेव तुल्य राजा श्रीपालके शरीरमें कुष्ट (कोढ़) रोग हो गया-सब शरीर गलने लगा, और शरीरमेंसे पीप लोहू आदि बहने लगा, समस्त शरीरमें पीडा होने लगी।

यह दशा केवल राजाकी की नहीं, किंतु राजाके समीपी सातसौ वीरोंकी भी यही दशा थी। दीवान, सेनापति, मन्त्री, पुरोहित, कोतवाल, फौजदार, न्यायाधीश और अंगरक्षक सबकी एकसी दशा थी। प्रजागण इनकी यह दशा देख अत्यंत दुःखी थे, और अपने राजाकी भलाईके लिए सदैव श्रीजीसे प्रार्थना करते थे, कि किसी प्रकार राजा व समीपी सुभट्टोंको आराम मिले;

परन्तु कर्म बलवान् है। उसपर किसीका वश नहीं चलता। एक कविने ठीक ही कहा है—

कर्म बली अति जगतमें, सबहि जीव बस कीन।
महाबली मुनि वे पुरुष, करे कर्म जिन छीन॥

तात्पर्य—इन सबका रोग दिनोंदिन बढ़ने लगा, और शरीरमें बहुत दुर्गंध निकलने लगी। जिस ओरकी पवन होती थी उस ओरके लोग इनके शरीरकी दुर्गंधसे व्याकुल हो जाते थे। प्रजामें एक तो राजाके दुःखसे यों ही दुःख छा रहा था, दूसरे दुर्गंधिसे और भी बुरी दशा थी परन्तु प्रजाके लोग राजासे यह बात कहनेमें संकोच करते थे, इसलिये कितने तो घर छोड़ कर बाहर निकल गये, और कितने ही जानेकी तैयारी करने लगे, अर्थात् सब नगर धीरे धीरे उजाड़ प्रतीत होने लगा, तब नगरके बड़े बड़े समझदार लोग मिलकर राजा श्रीपालजीके काका वीरदमनके पास आये और अपनी सब दुःखकहानी कह सुनाई। वीरदमनने सबको धीरज देकर कहा कि—आप लोग किसी प्रकार व्याकुल न हों। राजा श्रीपाल बड़े न्यायी और प्रजावत्सल हैं। वे आजकल पीड़ाके कारण बाहर नहीं निकलते, इसीलिये उनके कानों तक प्रजाकी दुःखवार्ता नहीं पहुंची है, इसीसे अबतक आप लोगोंको कष्ट पहुंचा है, अब शीघ्र ही यह खबर उनको पहुंचाई जायगी, और आशा है कि वे तुरन्त ही किसी प्रकार प्रजाके इस दुःखका प्रतीकार करेंगे। इस प्रकार संतोषित कर वीरदमनने सबको विदा किया॥

---

(६) श्रीपालका वीरदमनको राज्य देकर उद्यान (वनवास) को जाना।

काका वीरदमन मनमें विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? जो राजा नगरमें रहते है तो प्रजा भागी जाती है, और जो प्रजाको रखते हैं तो राजाको बाहर जाना पडेगा। यह तो गुड लपेटी छुरी गलेमें अटकी है जो बाहर निकालें तो जीभ कटे, और अंदर निगलें तो पेट फटे, इस प्रकार दुचित्ते हो रहे थे, सोचते थे-

पख विना पक्षी जिसो, पानी बिन तालाब ।
दांत विना बरवर जिसो, रैयत बिन त्यों राव ॥
नभ उडुगन ज्यों चंद बिन ज्यों विन वृक्ष उद्यान ।
जैसे घर बिन मेह त्यों, प्रजा विना राजान ॥
जैसे ब्राह्मण वेद बिन, [illegible] वित्त बिन जान ।
शस्त्र बिन क्षत्री जिसो, विना प्रजा राजान ॥

तात्पर्य-बिना प्रजाके राजा शोभा नहीं देता है। इत्यादि सोच विचार कर वीरदमन राजाके पास आये और अति ही नम्र विनीत वचनोंमें प्रजाकी सब दुःखकहानी कह सुनाई, तब राजा प्रजाके दुःखको सुनकर और भी व्याकुल हुए, और आतुरतासे पूछने लगे-'काकाजी ! प्रजाको इस कष्टसे बचनेका कुछ यत्न हो, तो निःशंक होकर कहो, क्योंकि जिस राजाकी प्यारी प्रजा दुःखी रहे, वह राजा अवश्य ही कुगतिका पात्र है। काकाजी ! मैं अपने कारण प्रजाको दुःखी रखना नहीं चाहता। मुझे इस बातकी विशेष चिंता है, क्योंके मेरे शरीरमे बहुत ही दुर्गन्ध

निकलती है, जिसको प्रजा नहीं सह सकती, और मुझसे कह भी नहीं सकती, इसलिये शीघ्र ही आप ऐसा उपाय बताइये, ताकि प्रजा सुखी होवे।"

यह सुनकर काका वीरदमन बोले—"हे राजन्! मुझे कहनेमें यद्यपि संकोच होता है; तथापि प्रजाकी पुकार और आपके आग्रहसे एक उपाय जो मुझे सूझा है निवेदन करता हूं, आशा है उसपर पूर्ण विचार कर कार्य करेंगे। श्रीमान्‌के शरीरमें जबतक यह व्याधिवेदना है, तबतक नगरके बाह्य उद्यानमें निवास करें, और राज्यभार किसी योग्य पुरुषके स्वाधीन कर देवें।"

वीरदमनकी बात सुनकर श्रीपालजीने निष्कपट भावसे कह दिया कि-मुझे यह विचार सब प्रकारसे स्वीकार है और मैंने भी यही विचार किया है। इसलिये मैं राज्यका भार इतने काल तक आपको ही देता हूं, क्योंकि इस समय इस कार्यके योग्य आप ही हैं, अर्थात् जबतक मेरे इस असाता वेदनीका उदय है, तब तक मैं अपना राज्य आपके द्वारा ही करूंगा, और इसका क्षय अर्थात् साता उदय होते ही मैं पुनः आकर राज्य सम्हाल लूंगा, वहांतक आप ही अधिकारी हैं। इसलिये आप भले प्रकार प्रजाका पालनपोषण कीजिये। उन्हें किसी प्रकार कष्ट न होने पावे। न्याय और नीतिपूर्वक वर्ताव कीजिये और मेरी माता कुन्दप्रभाकी रक्षा भी पूर्ण रूपसे कीजियेगा, जिससे इनको मेरे वियोगजनित दुःख न व्यापने पावे, इत्यादि नाना प्रकारके आदेश (शिक्षा) देकर राजा श्रीपालने समस्त

सातसौं कोढ़ी वीरोंको साथ लिया और नगरसे बहुत दूर उद्यानमें जाकर डेरा किया।

जब श्रीपालके वन जानेकी खबर प्रजाके लोगोंको मालूम हुई तो घरोंघर शोक छा गया, बस्ती श्रीरहित शून्य दीखने लगी सब लोग इस वियोग जनित दुःखसे व्याकुल हो रुदन करने लगे, अस्थायी राजा वीरदमनके भी टपटप आंसू गिरने लगे, माता कुंदप्रभा तो बावलीसी हो गई, उनको अपने पति अरिदमनकी मृत्युका शोक तो भूला ही न था, कि पुनः पुत्रके वियोगका और भी शोक हो गया, गद्गद स्वर विलाप करने लगी। विशेष कहाँ तक कहें, शोकके कारण दिन भी रात्रिवत मालूम होने लगा। यद्यपि वीरदमनराजाने सबको धैर्य दिया, तथापि राजभक्त प्रजाको संतोष कहा? हाय! कर्मसे कुछ वश नहीं है। देखो! कैसी विचित्रता है कि:—

पुण्य उदै अरि मित्र हों, विष अमृत ह्वै जाय।
इष्ट अनिष्ट ह्वै परनमे, उदै पाप वश भाय॥

निदान सब लोग कुछ काल बाद शोक छोड़ निज निज कार्यमें दत्तचित्त हुए। काका वीरदमन राज्य करने लगे, और राजा श्रीपाल उद्यानमें जाकर सातसौ वीरों सहित कर्मका फल भोगने लगे।

(७) मैनासुंदरीका वर्णन ।

इसी आर्यखंडके मालवदेश (मालवा) में उज्जैनी नामकी एक नगरी है, वहांका राजा पहुपाल बहुत ही प्रतापी, शूरवीर, रणधीर, महां पराक्रमी और बलवान् था। वह नीतिपूर्वक प्रजाको पुत्रवत पालन करता था, जिसके राज्यमें कुबेर सदृश धनी लोग रेहते थे, विद्याका तो अपूर्व कोष दिखाई देता था। बडे बड़े उत्तंग महल ध्वजा तोरण वगैरे आदिसे सुसज्जित बने थे। नगरका विस्तार १२ कोस लम्बा और नव कोश चौड़ा था बहुत दूर दूर तक राजाकी आज्ञा मानी जाती थी। वहां कोई दुखी दरिद्री नहीं देख पडते थे। बागबगीचे, कोट खाई सरोवर आदिसे नगरकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी। राजाके यहा निपुणसुंदरी पट्टरानी, आदि बहुतसी रानियां थीं। पट्ट-रानी निपुणसुन्दरीके गर्भसे दो कन्यायें हुई। एकका नाम सुर-सुंदरी और दूसरीका नाम मैनासुंदरी था। प्रथम कन्या सुर-सुंदरी केवल संसारी विषयभोगोंकी आकांक्षा करनेवाली, और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रको सेवन करनेवाली विवेकहीन रूपवती थी और द्वितीय कन्या मैनासुंदरी जैसी रूपवती थी, वैसी ही गुणवती और परम विवेकी जैनधर्ममे अत्यन्त लवलीन थी। इसका चित्त सरल और दयालु था। वचन मधुर, नम्र और सत्य-रूप निकलते थे, इसीसे यह सबको प्रिय थी।

एक दिन राजाने रानीसे सम्मति मिला कर दोनों पुत्रियोंको पढ़ानेका विचार किया, सो प्रथम ही सुरसुंदरीको बुलाकर पूछा-हे

बाला ? तुम कौनसे गुरुके पास पढ़ना चाहती हो ? तब सुरसुंदरीने कहा, कि शैवगुरुके पास पढ़ूंगी। यह सुनकर राजाने तुरंत ही एक शैवगुरूको बुलाकर उसे सब प्रकार संतोषित कर कन्या सौंप दी। तब वह ब्राह्मण (शिवगुरु) राजाको शुभाशीर्वाद देकर सुरसुंदरीको ले निज घर गया, और अनेक प्रकार कला चतुराई विद्याएं सिखाने लगा।

फिर राजाने द्वितीय कन्याको बुलाकर पूछा—ऐ बाला! तुम किस गुरुके पास पढ़ना चाहती हो ? तब मैनासुंदरीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—हे तात ! मैं जिन चैत्यालयमें श्री जिनगुरुके पास पढ़ना चाहती हूं। यह सुनकर राजा रानी अति प्रसन्न हुए, और कन्याको लेकर स्वयं अष्ट प्रकार द्रव्य संजोकर जिन चैत्यालय पधारे। वहां जाकर प्रथम ही श्रीजिनेन्द्रकी भक्तिभावसे पूजा करके फिर श्रीगुरुको नमस्कार किया। गुरूजीने धर्मवृद्धि दी। तब राजा और रानीने विनती की—हे स्वामी ! इस बालिकाकी इच्छा आपके समीप विद्याभ्यास करनेकी है, इसलिये कृपाकर इसे विद्यादान दीजिये। मैनसुंदरीने भी कर जोड़ प्रार्थना की—हे कृपासिन्धु ! धर्मावतार ! मुझे विद्यादान दीजिये। तब श्रीमुनि बोले, कि इस बालिकाको आर्यिकाके पास पढ़नेको बिठावो, राजाने गुरुकी आज्ञानुसार पुत्रीको आर्यिकाके शरणमें छोड़ रानी सहित स्वगृहको प्रयाण किया। आर्यिकाजीने प्रथम ही उसे ॐकार जो सबका सार है पढ़ाया—

"मंगलमई मंगल करन, मंगल परम बखान।
ॐकार सबमांहि, पार उतारन जान॥

सूचक लोकालोकका, द्वादशांगका सार ।
अरु गर्भित परमेष्ठि पन, कर्म भर्म क्षयकार ॥"

इस प्रकार ॐकारसे आरंभ करके श्रीपरम तपस्विनी आर्यिकाजीने थोड़े ही दिनोमें इस कुमारिकाको शास्त्र, पुराण, संगीत, ज्योतिष, वैद्यक, तर्कशास्त्र, सामुद्रिक, छंद, आगम, अध्यात्म, नृत्य, नाटक इत्यादि सर्व दिया और मुख्य २ भाषाओंका ज्ञान करा दिया। जब वह सम्पूर्ण कलाओंमें भी निपुण होगई तब श्री गुरुके पास जाकर चार ध्यान, षोडशकारण, दशलक्षण, रत्नत्रयादि व्रतों और धर्मका स्वरूप सीखा।

इस प्रकार मैनासुंदरी जब सब विद्या पढ चुकी, तब श्री जिनदेवकी पूजा कर और गुरकी आज्ञा लेकर अपने घर आई। सो अपने मातापितादि गुरुजनोंकी यथायोग्य विनय करके कुलीन पुरुषोंकी कन्याओंकी भांति सुखसे कालक्षेप करने लगी। और ज्येष्ठ पुत्री सुरसुंदरी (जो शिवगुरके पास पढनेको गई थी) भी वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक आदि सम्पूर्ण विद्या पढ चुकी। तब वह ब्राह्मण पंडित उसे लेकर राजाके समीप उपस्थित हुआ और आशीर्वाद देकर कन्या राजाको सौंप दी, इसपर राजाने उसे उचित पुरस्कार (इनाम) दे संतोषित कर विदा किया।

एक दिन राजा सुखासनसे मंत्री आदि सहित बैठे हुवे थे कि इतनेमें बडी पुत्री आई। राजा उसे तरुणावस्था प्राप्त देखकर पूछने लगे– हे पुत्री! तेरा लग्न (व्याह) कहां और किसके साथ होना चाहिये? तुझे कौन वर पसंद है? तब सुरसुंदरी बोली– पिताजी पुण्यके योगसे ही विद्या, धन, ऐश्वर्य, रूप, यौवनादि

सब मिलता है, सो तो सब आपके प्रभावसे प्राप्त है ही, और लग्नादि कार्य गृहस्थोंके मंगल कार्य हैं, इन्हींसे सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिये मुझे कोशांबी नगरीके राजाका पुत्र हरिवाहन जो सब गुण सपन्न, रूपवान्, बलवान् है; पसंद है सो उसीके साथ मेरा लग्न होना चाहिये ! तब राजाने यह बात स्वीकार की और बड़े आनन्द व उत्साहसे सुरसुन्दरीका लग्न (व्याह) शुभ मुहूर्तमें उसके इच्छित वरके साथ कर दिया। इसी प्रकार एक दिन छोटी पुत्री मैनासुन्दरी जब चैत्यालयसे आदीश्वरस्वामीकी पूजा कर गंधोदक लिये हुये पिताके पास आई, तो राजाने उसे आवो बेटी ! आवो ! कह कर बैठनेका संकेत किया। पुत्रीने विनय सहित भेंट स्वरूप राजाके सन्मुख गंधोदक रख दिया और योग्य स्थानपर बैठ गई। राजाने पूछा—यह क्या है ? पुत्रीने उत्तर दिया हे पिताजी ! यह गंधोदक (जिन भगवानके न्हवनका जल) है। इसको शरीरपर लगानेसे अनेकानेक व्याधि जैसे कोढ़ (कुष्ट), दाद (गजकर्ण), खाज (खुजली) आदि रोग दूर हो जाते हैं। कैसा ही दुर्गंधित शरीर हो, परंतु थोड़े ही समयमें इस गंधोदकसे अति सुगंधित स्वर्ण सरीखा निर्मल शरीर हो जाता है। इस गंधोदकको सुर नर विद्याधर सभी मस्तकपर चढ़ाते हैं और अपने आपको इसकी प्राप्ति होनेपर कृतकृत्य समझते हैं। देखिए ! जब श्रीतीर्थंकर देवका जन्म होता है, तब इन्द्र प्रभुको सुमेरु पर्वत पर ले जा कर एक हजार आठ कलशोंसे अभिषेक करता है, वह अभिषेकका जल इतना बहुत होता है, कि उस जलके प्रवाहसे नदी बह जाती है। परंतु वहांपर परमभक्त सुर नर विद्याधरोंके

द्वारा मस्तकमें लगाते हुवे वह जल बिलकुल शेष नहीं रहता है। कहां तक कहूं ? इसकी महिमा अपार है। सब कुछ इच्छित फलकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिए आप भी इसे वन्दन कीजिये अर्थात् मस्तकपर लगाइये।

यह सुनकर राजाने सहर्ष गंधोदक मस्तकपर चढाया, और पुत्रीको भक्तियुक्त देखकर प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक मस्तक चूंब मधुर वचनोंसे उसकी परीक्षा करने लगा—पुत्री ! पुण्य क्या वस्तु है ? और वह कैसे प्राप्त होता है ?

मैनासुंदरी कहने लगी—हे तात ! सुनो—

वीतराग सर्वज्ञ अरु, हित उपदेशी देव।
धर्म दयामय जानिये, गुरु निर्ग्रन्थकी सेव॥
पुण्य उदधि, यह जानिये, अहो तात गुण लीन।
स्वर्ग मोक्ष दातार ये, प्रगट रत्न हैं तीन॥

अर्थात् अर्हंत देव, दयामयी धर्म और निग्रंथ गुरुकी सेवासे ही पुण्यबंध होता है। और तो क्या इनकी सेवा अनुक्रमसे मोक्षकी देनेवाली होती है। राजा पुत्रीके द्वारा अपने प्रश्नका उत्तर पाकर और भी प्रसन्न हुवे, और विना विचारे पुत्रीसे कहने लगे—पुत्री, तू अपने मनके अनुसार जो रूपवान् पराक्रमी वर तुझे पसंद हो, सो मुझसे कह। मैं सुरसुंदरीके समान तेरा लग्न भी तेरी पसंदगीसे कर दूंगा। यह पिताका वचन मैनासुंदरीके हृदयमें वज्र जैसा घाव कर गया। वह चुप हो रही, कुछ भी उत्तर मुंहसे नहीं निकला, मन ही मन सोचने लगी कि पिताने ऐसे निष्ठुर वचन क्यों कहे ? क्या कुलीन कन्यायें भी कभी मुंहसे वर मांगती

हैं ? नहीं २ शीलवान् कन्यायें कभी नहीं कह सकती हैं। यथार्थमें जिसने जिनेन्द्रदेवको पहिचाना नहीं और निर्ग्रन्थगुरु दयामयी धर्म नहीं जाना है उनकी यही दशा होती है ॥ विना दशलक्षण व रत्नत्रय धर्मके जाने यथार्थमें विवेक नहीं हो सकता इत्यादि विचारोंमें निमग्न हुई पुत्री पृथ्वीकी ओर इकटक देखती रही, तो भी राजाने इसका भाव न समझा, और फिरसे कहा— पुत्री ! यह लज्जा योग्य बात नहीं है। तूने जो कुछ विचार किया हो अर्थात् जो वर तुझे पसंद हो सो कह।

इस प्रकार ज्यों ज्यों राजा पूछता था; त्यों त्यों कुमारीको उसकी बातोंपर घृणा होती थी। वह विचारती थी कि हाय ! राजाकी बुद्धि कहां चली गई, जो कि निर्लज्ज हुवा, इस प्रकार फिर फिरसे प्रश्न कर रहा है.? यदि इसने हमारे गुरुका वचन सुना होता, तो कदापि ऐसा कठोर वचन मुंहसे नहीं निकालता। परंतु जब पिताका विशेष आग्रह देखा, तब वह लाचार होकर बोली—

हे पिता ! कुलवंती कुमारियां कभी भी अपने मुंहसे वर नहीं मांगती। माता पितादि स्वजन वा गुरुजन जिसके साथ व्याह देते हैं, उनके लिये वही वर कामदेवके तुल्य होता है। चाहे वह अंधा, लूला, काना, बहरा, पांगुला, कोढ़ी, रोगी, राव, रंक, बाल, वृद्ध, रूपवान्, कुरूप, मूर्ख, पंडित, निर्दयी, निर्लज्ज हो अथवा सर्वगुण सम्पन्न हो, परन्तु उन कुमारियोंके लिये वही वर उपादेय (ग्रहणयोग्य) है। कन्याओंका भला बुरा विचारना माता पिताके आधीन है। वे चाहे सो करें। मैंने श्रीगुरुके मुंहसे ऐसा ही सुना है, और शास्त्रोंमें भी यही कथा प्रसिद्ध है, कि

कच्छ सुकच्छ राजाकी कन्यायें यशस्वी और सुनन्दा भी जब तरुण हुई, तो उनके पिताने श्रीआदीश्वर (ऋषभनाथ) स्वामीको परणाई थी, और आदिनाथकी दो कन्यायें ब्राह्मी और सुंदरी जब तरुण हुई, और उनके लग्नका विचार नहीं किया गया, तो वे कुमारिकायें समस्त इन्द्रिय विषयोंको तुच्छ और दुःखरूप समझ कर जिनदीक्षा लेकर इस पराधीन स्त्रीपर्यायसे सदाके लिये छूट गई, अर्थात् वे स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गमें देव हुई, इसलिये हे पिता! अपने मुंहसे वर मांगना निर्लज्जोंका काम है—लोकविरुद्ध है। सुरसुन्दरीने जो वर मांग लिया, सो यह उनकी चतुराई नहीं है, परन्तु वह वेचारी क्या करे? खोटे गुरु (कुगुरु) की शिक्षाका प्रभाव ही ऐसा है। संगतिका प्रभाव अवश्य ही होता है। देखो कहा है—

तपे तवापर आय स्वाति जल बूंद विनट्ठी।
कमल पत्रपर सग वही मोती समदिट्ठी॥
सागर सीप समीप भई मुक्ताफल सोई।
संगतिका प्रभाव प्रकट देखो सब कोई॥
नीच संगसे नीच फल, मध्यमसे मध्यम सही।
उत्तमसे उत्तम मिले, ऐसे श्रीजिन गुरु कही"॥

देखिये—यह जीव भी इस संसारमें अनादि कर्म बंधवशात् स्वस्वरूपको भूला हुवा पर (पुद्गलादि पर्यायों) में आपा मान चतुर्गतिमें भटकता है और उन कर्मोंके उदयजनित फलमें रागद्वेष बुद्धि कर सुखदुख रूप इष्टानिष्ट कल्पना करता है। तथा उसमें तनमयी होकर हर्ष विषाद करता है परन्तु यह उसकी भूल है। क्योंकि जो कुछ सर्वज्ञने देखा है वह अवश्य होगा इसलिये समताभाव रखना,

ही कर्तव्य है। जब कि समीचीन पुरुषोंको ही कर्मने नहीं छोड़ा, तो हमारे जैसे शक्तिहीन मनुष्योंकी क्या बात है? इसलिए हे पिता! सुरसुंदरीका वह दोष नहीं था। वह केवल कुगुरुकी शिक्षाका ही फल था। माता पिताका कर्तव्य है कि वे जब अपनी कन्याओंको विवाह योग्य देखें; तब उत्तम कुलवान्, रूपवान्, गुणवान् अपने बराबरीवाला योग्य वर देख कर उसके साथ व्याह दें। यथार्थमें वे ही कन्यायें प्रशंसनीय हैं जो गुरुजनोंके द्वारा किया हुआ सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर, उसीमें संतोष करें, क्योंकि प्रथम तो गुरुजनोंके द्वारा कभी अपनी कन्याओंके साथ अहित होनेकी आशा ही नहीं है और कदाचित् किसी अविचारी माता पितादि द्वारा कारणवश ऐसा ही होजाय, अर्थात योग्य वर न भी मिले, तो उसे पूर्वोपार्जित कर्मका फल जानकर उसी प्राप्त वरकी सेवा करें। इन्हींमें उनका कल्याण है। संसारमें इष्टानिष्ट वस्तुओंका संयोग कर्मके अनुसार स्वयमेव ही आकर मिल जाता है, इसमें किसीका कुछ दोष नहीं है, इसलिये पिताजी आपको अधिकार है, चाहे जिसके साथ व्याहो।

यह बात सुनकर राजा क्रोधित होकर बोले—बस बस पुत्री चुप रह। तेरा उपदेश बहुत होगया, क्या तेरे गुरुने तुझे यही पढ़ाया है? कि अपने उपकारीजनोंके उपकारका तिरस्कार करे। तू मेरे घरमें तो नाना प्रकारके उत्तम भोजन करती है, वस्त्राभूषण पहिनती है, और सब प्रकार सुख भोग रही है, तो भी कहती कि मुझे तो सब मेरे कर्म हीसे मिलता है। यह तेरी कृतघ्नता है।

मैनासुंदरीने कहा–पिताजी ! गुरुका बचन यथार्थ है, आप मनमें विचार देखिये ! मेरा शुभ कर्मका ही उदय था कि आपके घर जन्म मिला, और ये सब सुख भोगनेमें आये। यदि मेरे अशुभ कर्मका उदय होता, तो किसी दरिद्रके घर जन्म लेती, जहा कि दुःख ही दुःख मिलता। सो वहां तो आप कुछ सुख देने आते ही नहीं। भला, और भी संसारमें अनेक प्राणी दुःखी देखे जाते है, उन्हें व नारकी आदि जीवोंको व देवादिकोंको कौन दुःख व सुख जाकर देता है, यथार्थमें **जीवको उसीका किया हुआ शुभाशुभ कर्म सुख व दुःखका दाता है।**

राजाको पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और उसी समय उसने मनमें यह ठान ली कि अब इसके **कर्मकी परीक्षा** करना चाहिए, जो इतना गर्वयुक्त होरही है। कुछ देर चुप रहा और ऊपरी मनसे मैनासुन्दरीकी प्रशसा करता हुआ उठकर महलोंमें चला गया, और मैनासुन्दरी भी हर्षित होकर अपने महलमें चली गई। नगरके लोग पुत्रीको देखकर बहुत ही आनन्दित होते थे। कोई कहते थे, यह देवी है, कोई कहते थे विद्याधारी है, कोई कहते थे रति है इत्यादि साराश–यह कि इसके रूपके समान और किसी स्त्रीका रूप नहीं था। यह षोडशी (१६ वर्षकी) कन्या वस्त्राभुषणोंसे अलंकृत हुई सुख पूर्वक रहने लगी, और निरंतर भोजन तैयार होनेपर श्रीमुनिके आगमनकालका विचार कर द्वारापेक्षण करती और जब समय निकल जाता और कोई मुनि (अतिथि) दृष्टि न पड़ते तब आत्मनिंदा करती हुई (कि हाय ! आज मेरे कोई पूर्वोपार्जित अंतराय कर्मके उदयसे

अतिथिका योग नहीं मिला इत्यादि) एक पुरुषके भोजनके योग्य रसोई निकालकर किसी दीन दुखीको देकर दानकी भावना भाती हुई भोजनको बैठती। इसी प्रकार नित्य प्रति वह कुमारिका षट्कर्म, देव पूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दानमें सावधान रहती हुई सानन्द कालक्षेप करने लगी।
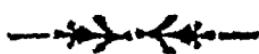
(८) मैनासुंदरीका श्रीपालसे व्याह।

एक दिन राजा पहुपाल (मैनासुंदरीके पिता) को अकस्मात् मैनासुंदरीके उन वचनोंका स्मरण आ गया "कि पुत्री कहती है " मेरा कर्म प्रधान है " और इस लिये वह तुरत ही क्रोध युक्त होकर मंत्रियोंको साथ पुत्रीके लिये हीन वरकी खोजमें निकला। चलते २ वह उसी चंपापुरके वनमें पहुंचा, जहां राजा श्रीपाल सातसौ सखाओं सहित पूर्वोपार्जित कर्मका फल (कुष्ट-व्याधि) भोग रहे थे।

श्रीपाल राजा पहुपालको आते देख कर स्व–आसनसे उठ खड़े हुए। और यथायोग्य स्वागत करके कुशल समाचार पूछे, तथा अपने पास तक आनेका कारण भी पूछा। राजा पहुपालके मंत्रियोंको यह देखकर विस्मय हो रहा था कि न मालूम राजा क्यों इस कोढ़ीसे मिल रहे हैं, जिसके अंगोपांग सड़कर गिर रहे हैं, महा दुर्गंध निकल रही है इत्यादि। कि इतनेमें ही राजा पहुपालने श्रीपालसे कहा- मैं वनक्रीडाके लिये आया हूं, आपका आगमन यहां किस प्रकार हुवा है ? क्यों कर यह नगर बसाया

है यह जानना चाहता हूं। तब श्रीपालने आद्योपान्त कुल कथा कह सुनाई। यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर बोला—मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हूं आपको जो चाहिये सो मांगो। श्रीपालने देखकर कहा—जो आप प्रसन्न है और वर देते हैं, तो आपकी पुत्री मैनासुंदरी मुझे दीजिये। राजा पहुपालने सुनकर प्रथम तो कुछ मनमें क्रोध किया, पश्चात मैनासुंदरीके वाक्योंको स्मरण कर हर्षित होकर बोले—तथास्तु अर्थात् हे कुष्टीराय! आपको मैंने अपनी लघु कन्या मैनासुंदरी दी। चलो, शीघ्र ही मेरे साथ आवो, और कन्याको व्याह कर सुखी होवो। श्रीपाल हर्षित हो र जाके साथ चलनेको तैयार हुए।

परतु ऐसे अवसरमें मंत्रियोंसे भला कब चुप रहा जाता है? तुरत ही गदगद हो दीन वचनों द्वारा राजासे प्रार्थना करने लगे—"हे नाथ! बड़ा अनर्थ हो जायगा। आपको प्रथम ही गुप्त मत्र कर ऐसा वचन देना चाहिए। कहां तो वह षोडष वर्षकी सुकुमारि कन्या और कहां यह कोढी आंगोपांगगलितशरीरी पुरुष। ऐसा अनमेलन सम्बन्ध उचित नहीं है। सब लोग हंसेगे और निंदा करेंगे। हे राजा! कन्या अपने मातापिताके आधीन होती है, इसलिये उन्हें चाहिये कि योग्यायोग्यका पूर्ण विचार करें। यदि बालकोंसे कुछ अपराध भी हो जावे, तो भी मतापिता उसे क्षमा ही करते है। अपने थोड़ेसे मानादि कषायके वश हो, अपने आधीन जीवोंको कष्ट पहुचाना, कि जिससे वे सदाके लिये दु खी हो जावें, कदापि उचित नहीं है। नीतिमें भी कहा

है कि—क्षत्रियोंका कोप, बालक, वृद्ध, स्त्री, निर्बल, पशु, आधीन, शरणमें आये हुवे और पीठ दिखानेवालों पर नहीं होता है। चाहे जो हो, परन्तु फिर भी ये दयाके ही पात्र हैं इत्यादि नाना प्रकारसे मंत्रियोंने समझाया, परन्तु होनी अमिट है। राजाके मनमें एक भी न जंची। उसने उत्तर दिया—अरे मंत्रियो, तुम लोग इस विषयमें कुछ नहीं समझते। यथार्थमें ऐसा पुरुष तीन खंडमें तलाश करने पर भी नहीं मिलेगा, सिवाय इसके यह उत्तम कुलीन क्षत्री भी है। सब कारबार राजाओं सरीखे ही हैं। रोग तो शरीरका विकार है। माल, खजाना, सैन्य आदिकी कुछ भी कमी नहीं है। यह पुरुष परम दयालु न्याय नीति आदि गुणोंसे परिपूर्ण है। जैसे अंधेके हाथमें बटेर पक्षीका आना कठिन है, इसी तरह जो इसे छोड़ जाऊं, तो फिर ऐसा वर मिलना कठिन है, इसलिए अवसर हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। मंत्रियोंने पुनः विनय की—हे स्वामी! स्त्रियोंको धन, वस्त्र, राज्य और ऐश्वर्य आदिका चाहे जितना सुख क्यों न हो, वह। तक सब कुछ उन्हें तृणके समान है। क्या आपने सीता, द्रौपदी, राजुल आदिकी कथा नहीं सुनी कि जिन्होंने सम्पूर्ण सुखों पर धूल डाल कर केवल अपने पतियोंके साथमें रहकर अनेक प्रकारके कष्टोंका साम्हना करना ही श्रेयस्कर समझा है, सो जब उन्हें यही सुख नहीं मिला, तो और सुख सब ऐसे हैं—जैसे कठपुतलीको शृंगारना। यद्यपि श्रीमानका चित्त इस समय किसी कारणसे ऐसा हो गया होगा, परन्तु पीछे बहुत पछतावेंगे, इसलिये सब काम सोच समझकर ही करना चाहिये।

यह सुनकर राजाने कहा—मंत्रियों ! तुम्हारा वारवार कहना उचित नहीं है। मैं कदापि तुम्हारी बात नहीं मानूंगा क्योंकि मैनासुदरीके वचन मुझे तीरके समान चुभ रहे हैं, इसलिये इससे बढ़कर उसके कर्मकी परीक्षा करनेका अवसर दूसरा न मिलेगा। बस, जो होना था सो हो गया। अब मेरे वचनको फिरानेकी किसकी ताकत है ? ऐसा कहकर तुरन्त ही राजा पहुपालने राजा श्रीपाल कोढ़ीको साथ लेकर स्वस्थानकी ओर विहार किया। कुछ समय बाद जब नगर निकट पहुचे, तो श्रीपालको उनके सातसौ सखों समेत नगरके बाहर उपवनमें डेरा देकर आप (राजा) प्रथम ही मैनासुदरीके निकट पहुंचा और हर्षित होकर बोला—हे पुत्री ! अब भी तुम कर्मका हठ छोडो और विचार कर कहो कि कौन वर पसंद है ? तब पुत्री बोली—तात, जो मुनि क्रियामें सावधान होकर भी दर्शनभ्रष्ट हों, जो धर्मात्मा होकर दया रहित हों, जो विवेकहीन ध्यानी हों, जो क्रोधी होकर त्यागी रहे और जो पुत्र गुणवान होकर भी पिताके वचनको लोपनेवाले हो तो उनके सब गुण व्यर्थ है, ऐसे क्रिया, धर्म, त्यागादि गुणोंसे कुछ लाभ नहीं है, इसलिए आप चाहें जिससे मेरा पाणिग्रहण करावें वही स्वीकार है।

राजाको पुत्रीके इन नीतियुक्त वचनोंसे कुछ भी संतोष न हुवा. वह कहने लगे—पुत्री ! मैंने तेरे लिये कोढ़ी वर तलाश किया है। तू उसे सहर्ष परण। मैनासुदरी पिताके वचन सुनकर मनमें बहुत ही हर्ष मान कहने लगी—हे तात ! कर्मके अनुसार जो वर मुझे मिला, वही स्वीकार है। इस जन्ममें तो मेरा स्वामी

वही कोढ़ी है, उसके सिवाय संसारके और सब पुरुष आपके (पिताके) समान हैं। यद्यपि मैनासुंदरीने ये वचन प्रसन्नमनसे कहे थे, परन्तु राजाको नहीं रुचे। वह बोला-पुत्री! तू बहुत हठीली है। तेरा स्वभाव दुष्ट है। तू विचारशून्य है, अब भी हठ छोड दे। परंतु मैनासुंदरीने तो मनसे श्रीपालको ही परण लिया था। वह बोली-पिताजी, आप चिन्ता न करें, कर्मकी गति विचित्र है। शुभ उदयसे अनिष्ट वस्तु इष्टरूप और अशुभ उदयसे इष्ट सामग्री भी अनिष्टरूप परणमती है, इस लिये अब जो कुछ होना था सो हो गया, इसमें कुछ सोचने विचारकी आवश्यकता नहीं है।

जब राजाने देखा कि अब तो पुत्री भी हठ पकड़ गई है, तब लाचार होकर ज्योतिषीको बुलाया, और विवाहका उत्तम मुहूर्त पूछने लगा। तब ज्योतिषीने लग्न विचार कर कहा-नरनाथ: आजका मुहूर्त बहुत ही अच्छा है। ऐसा मुहूर्त फिर बीस वर्ष तक भी नहीं बनेगा; क्योंकि सूर्य, चन्द्र और गुरु ये तीनों वर और कन्याके लिये बहुत ही अच्छे हैं। ऐसा उत्तम और निकट मुहूर्त सुनकर राजा प्रसन्न हुवा, और विप्रको दक्षिणा देने लगा, तब उसने हाथ लंबा नहीं किया-अर्थात् दान नहीं लिया। और जब राजाने कारण पूछा, तो उसने वर्तमान वरकी स्थितिपर शोक प्रकाशित किया और कहने लगा-हे राजा! संसारमें प्राणी कर्मसे बंधा हुआ है। आपका इसमें क्या दोष है? कन्याका भाग्य ही ऐसा है जो रूप और गुणकी खानि होते हुवे भी कोढ़ीके साथ ब्याही जा रही है। हे राजा! आपको अवश्य ही विचार करना

चाहिए था। आप ऐसे चतुर, न्यायी और नीतिवान् होते हुए भी कैसे भूल गये? आपकी बुद्धि कहां चली गई! जो यह अनर्थ करने पर उद्यत हो गये? मालूम होता है कि अब राज्यकी कुछ अशुभ होनहार है।

ऐसा कहकर विना ही द्रव्य लिये वह ब्राह्मण घरको चला गया। अब क्या है, सब नगरमें तथा आसपास चारों ओर सोने बैठने खाते पीते हर समय यही कथा होने लगी। जो कोई इस बातको सुनता था, वही राजाकी बुद्धिको धिक्कार देता था। जब विवाह कार्य आरंभ होने लगा, तब पुनः मंत्रियोंने आकर निवेदन किया–हे राजा! देखो, अनीति होती है? इसका परिपाक अच्छा नहीं है। एक अबला बालिकाके साथ ऐसा अनर्थ करना सर्वथा अनुचित है। आप प्रजापालक है, फिर तो आपकी वह तनुजा है। देखिये, विचारिये। जो राजा मंत्रियोंके वचनपर विचार नहीं करते है, जो सुभट रण त्याग कर भागते है, जो शूरवीर क्रोध छोड देते है, जो साधु क्रोध धारण करते है, जो दाता विवेकहीन होते हैं, जो साधु वाद करते है, जो रागी उदास रहते है, जो चोर अपना भेद बता देते है, जो रोगी स्वादके ग्राही होते है, जो साहु उधार लेन देन करते है, जो वेश्या व्रत लेकर बैठती है, जो स्त्रियां स्वतंत्र हो घरोघर डोलती है, जो पात्र क्रियारहित होते हैं और जो तपस्वी लोभी होते है वह अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं, इसलिए बहुत क्या कहा जाय? अब भी चेत जाओ और पुत्रीको दारुण दुःखमें डालनेसे बचो।

है। महाराज! अबतक तो आप सदैव मंत्र (विचार) के अनुसार चलते थे; परंतु आज क्या हो गया है? जो ऐसी रूप और गुणोंकी खानि पुत्रीको एक कोढ़ी पुरुषको दे रहे हो? हम-लोग आपसे सत्य और आग्रहपूर्वक कहते हैं कि इसके बदले आपको बहुत दुःख उठाना पड़ेगा, इसलिए आप हठ छोड़ दीजिये।

यह सुनकर राजा कहने लगा—हे बुद्धिमान मंत्रियो! तुम बिना विचारे ही क्यों व्यर्थ बकवाद करते हो? क्या मैं जो तिलक कर चुका हूं, वह भी कोई फिर सकता है? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सक्ता। जो कह चुका हूं, वही होगा। राजावोंके वचन नहीं जाते, चाहे प्राण भले ही चले जांय—कहा है—सिंह लगन कदली फलन, नृपति वचन इकवार। त्रियातेल, हमीर हठ चढ़े न दुजीवार॥ मंत्रियोंने फिर भी साहसकर कहा—हे राजा! आपका कुल अति निर्मल है, उसको आप कलंकित न करें। यह दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर व्यर्थ अपयश लेना ठीक नहीं है। आपके जैसा यह निंद्य कार्य कोई अविवेकी भी नहीं करेगा। इसलिये ऐसा नीच कृत्य आपको कदापि काल नहीं करना चाहिए। यद्यपि मन्त्रियोंका कहना राजाके हितके ही लिये था; परन्तु जैसे पित्त ज्वरवालेको मिठाई भी कडुवी मालूम होती है, उसी प्रकार हठ रोगसे पीड़ित तीव्र कषायके उदयमें राजाको मंत्रियोंके वचन बहुत ही बुरे मालूम हुए। वह क्रोधसे भरे हुए लाल लाल नेत्र करके बोला—बस, बस बहुत हुवा अब चुप रहो! अबतक मैंने तुम्हारा मान रक्खा, और कुछ भी नहीं कहा। मेरे मनमें कुछ और है, और तुम लोग कुछ और ही कहते हो।

सेवकका काम है कि स्वामीकी इच्छानुसार प्रवर्ते। यदि अब तुम लोग कुछ भी विरुद्ध बोलोगे, तो दण्डके भागी होवोगे।

मन्त्रीगण राजाके क्रोधभरे वचन सुनकर बोले–हे महाराज, हम लोग निर्भय होकर प्रार्थना करते हैं। हम लोगोंको दण्डका कुछ भी भय नहीं है; क्योंकि हमारे कुलकी यही रीति है, कि स्वामीका हित जिस प्रकार होता देखें, उसी प्रकार कार्य करें, और अयोग्य प्रवृत्तिको यथाशक्ति रोकनेका प्रयत्न करें! यदि हमलोग ऐसा न करें, तो हमारे कुलकी रीति जाती है। और राजाओंका भी यही स्वभाव होता है–जब कोई कार्य करना होता है, तब मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे मन्त्र करते हैं और सब मिलकर जो राय अधिक और प्रशंसनीय होती है, उसीके अनुसार कार्य करते हैं। यही रीति परम्परासे चली आती है, इसीसे हम लोग वारम्वार कहते हैं। इसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है। स्वामीके कार्य करनेमें हमें जीने और मरनेका कुछ भी संशय नहीं रहता है। हे राजा! विचार कीजिए, और हठका परित्याग कीजिए। इस प्रकार मन्त्रियोंने बहुत समझाया, परन्तु राजाके चित्त पर एक भी बात न जमी–जैसे चिकने घड़ेपर पानी नहीं ठहरता है। वह निःशङ्क होकर बोला–अरे मन्त्रियो! अब चतुराई करनेका समय नहीं है। आप लोग शीघ्र ही मेरी आज्ञानुसार विवाहकी तैयारी करो, और मैनासुन्दरीके वरको शोभा (ब्याहका एक नेग है। जो अगवानीके समय एक सुन्दर बैल सजाकर उस पर बहुत सुवर्ण मुद्राएं तथा अन्य रत्नादि लादकर वरको भेंट स्वरूप देते हैं) पहुचावो।

तब लाचार होकर मंत्री अपनासा मुंह लेकर उठ खड़े हुए, और आज्ञानुसार विवाहोत्सवका प्रबन्ध करने लगे, सो ठीक ही है। कहा है—

नौकर बंधुआ भामिनी, ऋणी कुसंगत जीव।
ये पांचों संसारमें, पराश्रय [illegible]॥

इस प्रकार वे मंत्री लोग तथा स्वजन परजन सभी राजाज्ञासे विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुए, और विविध प्रकारके मंगलगान नृत्य वादित्रादि होने लगे। सभामंडप सुवर्ण और रत्नोंसे सजाया गया, जिसमें मोतियोंके बंधनवार (तोरन) लटकाये गये। विवाहमंडप हरे बांस पल्लव और पुष्पोंसे सजाया गया। सुवासन (सौभाग्यवती) स्त्रियां मोतियोंके चूर्णसे चौक पुरने लगीं, इत्यादि यह सब कुछ होता था, परन्तु जैसे जलमें रहते हुए भी कमल जलसे भिन्न ही रहता है, उसी प्रकार इन सब उत्सवमें सम्मिलित होनेवालोंकी भी दशा थी। सभी लोग राजाकी बुद्धिपर मन ही मन धिक्कार देते और कन्याकी दशाका विचार कर करुणार्त हो रहे थे। कहीं बाजे बजते थे और कहीं शोकागार बन रहा था, तात्पर्य— वह एक ऐसा विचित्र आश्चर्यकारक अवसर था कि नवागन्तुक पुरुष (जो इस भेदको न जानता हो) की बुद्धि बड़े गोरखधंधेमें पड़ जाती थी। वह यह नहीं जान सकता था, कि यह विवाहोत्सव है, या कोई शोक-समारोह है।

यद्यपि विवाहकी तैयारियें जैसी राजाओंके यहाँ होना चाहिये सब वैसी ही संपूर्ण प्रकारसे हुई थीं; परन्तु कन्याके भवितव्यका विचार मनमें उत्पन्न होते ही वह सब राग रंग भूल जाता था,

सब लोग चिंतित थे; परन्तु राजा पहुपालको तो यह पड रही थी कि कब फेरे फिरें। कारण कि कहीं कोई विघ्न न आजावे। इस लिये वह मन्त्रियोंसे बोला-मंत्रियो! मुहूर्त आपहुँचा है। तुम लोग शीघ्र ही जाकर वरको सादर ले आओ। मेरा चित्त अत्यन्त विह्वल हो रहा है, कि कब जंवाईको देखू, और उसकी यथाशक्ति शुश्रूषा करूँ।

मंत्रीगण जो अपने सब उपाय करके निष्फल होचुके थे सो बिन कुछ कहे ही आज्ञानुसार वहाँ पहुँचे, जहां कुष्टीराज श्रीपालको डेरा दिया गया था, और बड़े समारोहसे वरराजाको ले आये। जो लोग अगवानी को गये थे वे वरको देख देखकर राजाको मनही मन धिक्कारते और उसकी हँसी करते थे। राजा पहुपालने किसीकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर बड़े आदरसे जँवाईको आगे जाकर स्वागत किया और उच्चासन देकर बैठाया तथा उबटन कराकर क्षीर, नीर तथा सुगन्धसे भरे हुवे कंचनके कलशोंसे अभिषेक कराया नाना प्रकारके उबटन, तेल, फुलेल, अरगजा, इत्र आदि शरीरमें मर्दन किये परंतु जैसे पुराने बर्तन पर कलई नहीं होसक्ती उसी प्रकार इन उपचारोंसे श्रीपालके शरीरकी दुर्गंधि कुछ भी कम न हुई। निदान वरको वस्त्र, आभूषण, मौर; मुकुट, कंकण, बागा इत्यादि सब कुछ पहिराए गये, परंतु उस समयका यह सब शृंगार ऐसा था, जैसे बंदरको शृंगारना; क्योंकि एक ओर वस्त्राभूषणोंकी कांति जगमगाती थी, दूसरी ओर पीप और रुधिर धार बह रही थी। इस प्रकार वर घोड़े पर सवार होकर विवाहमंडपमें आया। कामनी घोरीं (फेरे फिरनेके पहिलेके

गीत) गाने लगीं। उस समय बहुत भीड़ थी, कारण कि एक तो राजघरानेका उत्सव, और दूसरे यह विचित्र गोरखधंधा। सो वहां उस भीड़में लोगोंके मुँहसे नाना प्रकारके भाव प्रगट होते थे। किसीके चेहरेसे शोक, किसीकेसे चिन्ता, किसीकेसे भय, किसीकेसे ग्लानि, किसीकेसे आश्चर्य, किसीकेसे क्रोध और किसीकेसे विरागता झलकती थी। सभी लोग विचारोंमें निमग्न हो रहे थे। और कितने ही लोग केवल कौतुकरूपसे ही सम्मिलित हुये थे, सो उन्हें क्या चाहे, किसीका बुरा हो या भला, अपने कौतुकसे काम। इस प्रकार भीड़ हुई कि आकाश धूलसे आच्छादित हो गया और सूर्यका प्रकाश भी जिससे ढंक गया मानों कि सूर्य लज्जासे ही छिप गया हो इत्यादि किसीका कुछ भी भाव हो; परंतु श्रीपालके आनदका तो ठिकाना नहीं था। सो ठीक ही है। जिस स्त्रीरत्नके लिये संसारमें जीव परस्पर घात करके तन, धन और प्राणोंका भी नाश कर बैठते हैं यदि वही स्त्रीरत्न विना प्रयास ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें भी विना प्रयास प्राप्त हो जावे तो फिर भला क्यों न हर्ष हो? होना ही चाहिये। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें गृहस्थाचार्यने विधिपूर्वक पंच परमेष्टी, अग्नि और पंच आदिकी साक्षी पूर्वक दोनोंका पाणिग्रहण करा दिया। जब विवाहकी विधि हो चुकी, तब मैना-सुन्दरी अपने पतिके साथ उनके आश्रमको पहुंचाई गई। जो लोग सुन्दरीको पहुँचाने गये थे, उन सबके चेहरेसे उस समय भी शोक, भय, लज्जा आदि भाव प्रदर्शित होते थे। प्रथम तो पुत्रीकी विदाई (जुदाई) ही दुःखदाई होती है, तिसपर उसको

ऐसे दुर्निवार दुःखका होना। इसीसे सब लोगोंकी आँखोंसे अश्रु-पात हो रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो श्रावण भादोंकी वर्षाकी झड़ी ही लग रही हो। राजा पहुपाल स्वयं चित्तमें बहुत खेदित और लज्जित हुए परंतु क्या करें? कर्म रेखपर मेख मारनेकी किसकी सामर्थ्य है? किसीके मुंहसे शब्द नहीं निकलता था चारों ओर हाय हायकी ध्वनि हो रही है, रानी (मैनासुन्दरीकी माता) तथा बड़ी बहिन मैनासुन्दरीके गलेसे लिपटकर जोर जोर रुदन करने लगीं—हाय पुत्री! तूने न मालूम पूर्व जन्मोंमें कैसे २ कर्म किये थे, जिनसे इस अथाह दुःखसागरमें तू डूब गई! हाय! तू कैसे इस आयुको पूर्ण करेगी? हाय! पुत्री! क्यों तूने इच्छित वर न मांग लिया? हाय! कहां तू महासुकुमारी बालिका और कहाँ वह कोढ़ी पति? अरे निर्दयी कर्म! तुझे किंचित् भी दया नहीं आई? भला, कुवरनादर तो यह अन्याय न करता। हे स्वामी! आप दया-सिन्धु प्रजा-पालक थे। परंतु आपके दया क्षमा संतोष आदि गुण कहां चले गये? अयुक्त कार्य क्यों किया? उस समय इनके रुदनको सुनकर पत्थर भी पिघल जाता, मनुष्यकी क्या बात?

राजा पहुपाल स्वयं नेत्रोंमें आंसु भर गद गद कंठसे रुदनकर कहने लगे—हाय कुमति! तुझे और कहीं ठिकाना न मिला, जो आकर मेरे ही हृदयमें वासकर, एक भोली कन्याको ग्रास बना लिया। हाय! मैंने हठात मंत्रियोंके वचन नहीं सुने, उनका तिरस्कार कर दिया! पुरोहितजीने समझाया तो भी न माना! मैंने अपने थोड़ेसे मिथ्याभिमानके वश होकर पुत्रीको आजन्मके

लिये दुःखी किया ! हाय ! मैना ! क्या करूं ? निःसन्देह तेरा कहना सत्य है वास्तवमें तेरे पूर्व जन्मकृत कर्मोंका उदय ही ऐसा था, जिसका मैं निमित्त वन गया । अब क्या करू ! हे पुत्री ! तू अपने इस कठोर हृदय अपराधी पिताको अपनी उदारतासे क्षमा कर ! इत्यादि । इस दृश्यको देखकर कठोरसे कठोर हृदयी भी एक वार जी खोलकर रो देता था, वहा उस सती शीलवती सुन्दरी कोमलांगी वालिकाके चेहरेपर अपूर्व खुशी झलक रही थी। वह इन सब दर्शकोंकी चेष्टासे घृणा प्रकाश करती हुई सोचती थी कि न मालूम क्यों ये लोग ऐसे शुभ अवसरपर अमगलसूचक चिन्ह प्रकट करते हैं ? क्यों नहीं शीघ्र ही मेरी विदा कर देते ? क्योंकि ज्यों ज्यों ये लोग देरी कर रहे हैं, त्यों त्यों मुझे स्वामीकी सेवामें अतर पड रहा है, और साथ ही मेरे भाग्यको दोष देते हुए मेरे पतिके लिये कोढ़ी आदि निंद्य वचन कह रहे हैं, तब उससे नहीं रहा गया और दीर्घस्वरसे बोली—

" हे माता, पिता, बंधु आदि गुरुजनो ! यद्यपि आप सब लोग मेरे शुभचितक हैं, और अबतक आप लोगोंने जो कुछ भी मेरे लिये किया, वह सब मेरे सुखके हेतु था; परतु अब आप लोगोंके ये वचन मुझे शूलसे भी तीक्ष्ण मालूम होते है । मैं अपने पतिके लिये ये वचन अब सुनना नहीं चाहती । क्या आप लोग नहीं जानते कि स्त्रीका सर्वस्व पति ही है ? जो सती, शीलवान् कुलवती स्त्रियां हैं, वे अपने पतिके लिये ऐसे वचन कदापि काल सुन नहीं सकती हैं । स्त्रियोंको उनके कर्मानुसार जैसा वर प्राप्त हो जाय, वही उनको पूज्य और प्रिय है । उसके

सिवाय संसारमें उनके लिये अन्य पुरुषमात्र कुरूप और पिता भ्राता व पुत्र तुल्य हैं। यद्यपि आप लोग मेरे पतिको कुरूप और रोगसहित देख रहे हैं; परन्तु मेरी दृष्टिमें वे कामदेवसे किसी प्रकार भी कम सुन्दर नहीं हैं। व्यर्थ आप लोग पश्चात्ताप कर रहे हैं। मुझे संतोष है, और मैं अपने भाग्यकी सराहना करती हूं कि जो ऐसे शूरवीर पराक्रमी सर्वगुणसम्पन्न रूपवान् वरकी प्राप्ति हुई है। यदि शुभोदय होगा, तो थोड़े ही समय बाद आप लोग इन्हें देव गुरु धर्मके प्रसादसे रोगमुक्त देखेंगे, इसलिये आपलोग शांति रक्खें, किसी प्रकार चिंता न करें॥ संसारमें सब जीव कर्माधीन हैं। **सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख** इसी प्रकार संसारका चक्र चलता है। जो कर्म उदय आता है, उसकी **निर्जरा** भी होती है। **मनुष्यका कर्तव्य है कि उदयजनित अवस्थाको पूर्व कर्मका फल समझकर समभावोंसे भोगे,** न कि उसमें हर्ष विषाद कर संक्लेश भावोंसे आस्रव व बंध करे, समता भावोंसे शीघ्र ही निर्जरा कर्मोंकी निर्जरा होती है और पुण्य कर्मोंमें स्थिति और अनुभाग बढ़ जाता है। और यदि हर्ष विषाद कर भोगता है, तो उदयजनित कर्मोंका फल कम तो होता नहीं हैं; किन्तु विशेष दुःखप्रद मालूम होता है और तीव्र कषायोंके द्वारा पुनः अशुभ कर्मबन्ध करके आगेके लिये दुःखका बीज बोता है, क्योंकि जीव कर्म भोगनेमें परतंत्र है; परन्तु कर्म करनेमें स्वतंत्र है सो उसे चाहिये कि कर्म करते समय सावधान रहे ताकि अशुभ कर्म बंध न होने पावे और कर्मफलको समभावोंसे

सहन करे, ताकि यहां भी भोगनेमें अतिशय कष्ट न मालूम होवे और आगामी बंधका कारण भी न हो व कम हो। हे स्वजनगणो! सुख दुःख देनेवाला संसारमें कोई नहीं है, केवल संसारी जीवोंको उनके अंतरंगमें उत्पन्न हुई इष्टानिष्ट कल्पना ही सुख व दुःखका मूल कारण है; क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो वस्तु एकको इष्ट है वही वस्तु किसी दूसरेको अनिष्ट मालूम होती है। यदि वस्तु ही इष्ट व अनिष्ट होती तो दोनोंको समान रूपसे इष्ट व अनिष्ट होना चाहिये थी, सो नहीं देखा जाता। देखिये, जिस महान् पुरुषको आप लोग अनिष्ट बुद्धिसे देखते हैं, वही पुरुष मुझे इष्ट प्रतीत होता है, इसलिये आप लोग इस चर्चाका यहीं अंत कर दें और आगामी अपना समय इस प्रकारकी चिंतामें न वितावें, यही मेरी प्रार्थना है। इसमें मेरे पिताका किंचित् मात्र भी दोष नहीं है, इसलिये कदापि आप लोग पिताजीको भी कुछ कह कर व्यर्थ क्लेशित न कीजिये।"

पुत्रीके ऐसे आगमयुक्त गंभीर वचन सुनकर सब ओरसे धन्य २ की ध्वनि होने लगी सबको संतोष हुआ। और सबलोग अपने अपने स्थानको पधारे। और राजाने भी कन्याको बहुत कुछ दहेज देकर विदा किया। यद्यपि विस्तारके भयसे सब दहेजका वर्णन नहीं हो सकता है, तो भी थोडासा कहते हैं। राजा पहुपालने विदाके समय सब स्वजन परजन व पुरजनको इच्छित भोजन, और अपने जँवाई राजा श्रीपालको छत्र, चमर, मुकुट आदि अमूल्य रत्नोंसे सुसज्जित किया, तथा पांचों कपडे पहिराये। पुत्रीको भी संपूर्ण प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र आभूषण दिये और साथमे सेवा करनेके

लिये एक हजार दास और एक हजार दासी, सहस्रों हाथी, घोड़े, रथ प्यादे, पालकी, नालकी, गाय, भैंस, ग्राम, पुर, पट्टन आदि दिये, और क्षमा मांगकर विदा किया। कुछ समय तक नगरमें यही चर्चा रही। फिर ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों लोग इस बातको भूलने लगे। सो ठीक ही है—

"कोई किसीके दुखको, नाहीं सकत बटाय।
जाको घी भूमी गिरो, सो ही रूखो खाय॥"

(९) श्रीपालका कुष्ट दूर होना।

जब श्रीपालजी मैनासुंदरीको विदा कराकर घर लिवा लाये, तभीसे उनको कुछ कुछ साताके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। ठीक है—**शीलवान् नर जहाँ जहाँ जाय, वहाँ वहाँ मंगल होत बनाय॥** मैनासुन्दरी तन, मन, वचनसे ग्लानि रहित पतिसेवामें लीन हो गई। वह पतिपरायणा अपने हाथोंसे पीप रुधिर इत्यादि धोती, पट्टी बांधती, स्नान कराती, उबटन, लगाती, लेप करती, कोमल शय्या बिछाती, वस्त्र बदलाती, प्रकृति और रुचिके अनुसार पथ्य भोजन कराती और श्रीजीसे निरंतर रोगकी निवृत्तिके लिये प्रार्थना करती थी। नित्यप्रति अतिथियोंको भोजन करानेके पश्चात् पतिको भोजन कराती और फिर आप भोजन करती। रात्रिको भी जागरण कर पतिसेवामें तत्पर रहती। इस प्रकार जब वह कोमलांगी दिन रात कठिन परिश्रम पूर्वक पतिसेवा किया करती थी, सो उसे इस प्रकार निरंतर श्रमित देखकर एक दिन श्रीपालजी बोले—

हे प्रिये ! कहाँ तो तुम अत्यन्त कोमलांगी निर्मल शीलादि गुणों और स्वरूपकी खानि हो, कि तुम्हारे मुखको देखकर चन्द्रमा भी शर्मा जाता है। तुम्हारे मधुर शब्द कोयलको भी मोहित करनेवाले है। तुम्हारी ग्रीवा मोरसे भी अधिक शोभा दे रही है, नेत्र मृगीसे भी अधिक भोलापन प्रगट करते है, कपोल विकसित गुलाबकी कलीकी शोभाको हरनेवाले है। नाशिका तोतेकी चोंचके समान, होठ अरुण कुसुमकी नाँई शोभा देते हैं। दांतोंकी पंक्ति मोतियोंकीसी आभा प्रगट करती है। कुच सुवर्ण कलशोंकी उपमाको धारण करते हैं, कटि केहरीके समान कृश जंघा केलेके समान कोमल, चाल हंसनीकीसी, स्पर्श रुईसे भी कोमल, महा सुगंधित शरीर और कांतिमान तेजस्वी छवि है। और कहां मैं अत्यन्त कुरूप, कुष्ट व्याधिसे पीड़ित, महा दुर्गंधित शरीरका धारी हूं, इसलिये हे वल्लभे ! जबतक मेरे इस अशुभ कर्मका उदय है; तबतक तुम दूर रहो—यह राध रुधिर पोंछते हुए तुमको मैं नहीं देख सकता हूँ। मुझे तुमको इस प्रकार सेवा करते देखकर बहुत करुणा व लज्जा उत्पन्न होती है, कि तुम जैसी स्त्रीको मेरे जैसा भर्तार मिला, इसलिये मेरे यावत् असाता कर्मका उदय है, तावत् तुम अलग रहकर सुखसे काल व्यतीत करो।

श्रीपालजीके ये वचन मैनासुंदरीके लिये हित और करुणा बुद्धिसे कहे गये थे; परन्तु उस समय ये वचन उसे तीक्ष्ण तीरके समान चुभ गये। सो ठीक है—

"पति [illegible] अरु आप [illegible]। यह न गहे कुलवती लुगाई॥

वह मंद स्वरसे बोली—हे नाथ ? मुझे आपके ये शब्द

सुहावने नही लगे। क्या दासीसे कोई अपराध बन गया है या सेवामें त्रुटि पाई गई है जो ऐसे तिरस्कारयुक्त वचन कहे गये है? प्राणनाथ! क्या स्वप्नमें भी मैं आपको छोड़ सकती हूं। क्या छाया शरीरसे, चाँदनी चन्द्रमासे, धूप सूर्यसे, उष्णता अग्निसे और शीतलता हिमसे पृथक् हो सकती है? नहीं, कदापि नहीं। चाहे अचल सुमेरु चल जावे, चाहे सूर्य पश्चिमसे उदय होकर पूर्वमें अस्त होवे, और चाहे जलमें अग्निवत् उष्णता हो जावे, तो भी **शीलवान् स्त्रियाँ पतिसेवासे विमुख नहीं हो सकती हैं।** स्त्रियोंको संसारमें एकमात्र सुखका आधार पति ही होता है और यदि पति ही तिरस्कार करे तो फिर कौन उन्हें अवलंबन देनेवाला है? जैसे डालीसे चूका बंदर, और वृक्षसे टूटा फल, इनको कोई सहायक नहीं, ऐसे ही **पतिसे विमुख स्त्रियोंको भी कोई सहायक नहीं होता है।** पुराणोंमें सीता, द्रौपदी, सुलोचना आदि सतियोंकी कथा प्रसिद्ध है कि जिन्होंने और सब सुखोंपर धूल डालकर पतिके साथ जगल-पहाडोंमें शेर, बाघ, स्याल प्रभृति हिंसक पशुओंका सामना करते हुये, कंकर पत्थरोंकी ठोकर खाकर, काटों-पर चलना स्वीकार किया था, परंतु पतिका साथ छोडना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। सो हे प्रियतम! मैं एक क्षणभर भी आपको ऐसी अस्वस्थ अवस्थामें छोडकर कदापि अलग नहीं रह सकती। मैं आपको अपना भर्तार बनाकर अपने आपको बड़ी भाग्यवती समझती हूँ। संसारमें वे ही स्त्रियाँ धन्य है कि जिन्होंने [illegible] है। प्राणपति! मेरी दृष्टिमें आपमे अभि

रूपवान्, गुणवान् धैर्यवान, बलवान मनुष्य कोई भी संसारमें नहीं है। मेरे नेत्र तो आपको देखकर ही प्रफुल्लित होते हैं। मेरा हृदय तभीतक पवित्र है, जबतक मैं आपका नाम जपती हूँ। हाथ तभीतक पवित्र हैं, जबतक आपके पद प्रक्षालन करती हूँ। मैं तभीतक धन्य हूँ जबतक आपकी सेवा करती हूँ। हे भर्तार! जो स्त्रियाँ शील रहित हैं, पतिकी निंदा करनेवाली है, उनको धिक्कार है। **शीलव्रत ही जगतमें प्रधान रत्न है।** शीलवान् नर नारियोंके देव भी किंकर होते है। और गृहस्थ स्त्रियोंका शीलव्रत स्वपतिकी अनुचरी होकर रहना ही है। इसलिये ऐसे पवित्र शीलको मैं कदापि नहीं छोड सकती हूं। शील ही मेरा रूप है, शील ही आभूषण है, शील ही श्रृंगार है। और शील हीसे जीना है। इसलिये चाहे सर्वस्व चला जाय, परतु यदि शील बच गया तो कुछ भी गया नहीं समझना चाहिये। इसलिये हे प्राणाधार! मेरी यही प्रार्थना है कि दासीको सेवासे विमुख न कीजिये। इस समय इससे बढकर आनन्द मुझे ससारमें और कुछ नहीं होसक्ता है।

श्रीपाल अपनी प्रियतमाके ऐसे वचन सुनकर रोम रोम हर्षित हो गद्‌ गद्‌ वाणीसे प्रशंसा करने लगे, वे कहने लगे कि हे गुणनिधे! तू धन्य है, जो तेरे हृदयमें शीलकी इतनी प्रतिष्ठा है, और मेरा भी भाग्य धन्य है जो तुझसी रूप शील व गुणकी खानि पत्नी मुझे मिली। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप हुआ। निःसन्देह कर्मकी गति अरोक व अमिट है, इसीका विचार कर वे दम्पति परस्पर वार्तालापमें समय व्यतीत करने लगे। सत्य है

कर्मने सबको लाचार किया है और तो क्या श्री पार्श्व-नाथ स्वामीपर भी आक्रमण किये विना न रहा, और पीछे भले ही सबलसे वैर करनेसे हार मानकर मरना पडा। सो देखो सीता, द्रोपदी, अंजनी, रावण, राम, बाहुबल, भरत आदि जो बड़े बड़े बली और प्राक्रमी नररत्न थे, उनको भी जब कर्मने नहीं छोड़ा, तब फिर हमारी तो बात ही क्या है? हा! एक उन्हीं पर जोर नहीं चलता जिनने इसको सम्पूर्ण प्रकार निर्मूल कर दिया है। अहा! हम भी उन्हींका (कर्मरहित सिद्ध परमेष्टीका) शरण लेवें, तो निश्चय है कि शीघ्र ही कभी हमारे भी कर्मोंका अन्त आवेगा। ऐसा विचार होते ही वे दोनों प्रफुल्लित होकर श्रीजीके गुणानुवाद गानेमें निमग्न हो गये। ठीक है;—

कर्म असाता अंत है, उदै जु साता आय।
तब सुध बुध सब ऊपजे, आप ही बने उपाय॥

पश्चात् वे दोनों (दम्पति) उठे और बडे उत्साहसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिने, और प्रासुक अष्ट द्रव्य लेकर श्री जिन चैत्यालयको वंदनार्थ गये। सो वहां पहुंचकर प्रथम ही 'ॐ जय ३ निःसहि निःसहि निःसहि' कहकर मंदिरके अंदर प्रवेश किया। और फिर तीन प्रदक्षिणा देकर श्रीजिनेन्द्रकी शांत मुद्राको देखकर परम शांतभावको प्राप्त हो स्तुति करने लगे-

शांति छबी मन भाई, स्वामी तेरी शांति छबी मन भाई। टेक

दर्शत मिथ्या तिमिर नाश हो, स्वपर स्वरूप लखाई।
परशत परम शांतिता उपजत, अरचत मोह नशाई॥स्वामी०॥

दोष अठारह रहित जिनेश्वर, सब जीवन सुखदाई।
आप तिरे पर तारण कारण, मोक्ष राह बतलाई॥ स्वामी०॥

तुम गुणमाल चितारत ही चित, कठिन कर्म कट जाई।
'श्रीपाल' अब भव तट पायो, शरण तुम्हारे आई॥ स्वामी०॥

इस प्रकार स्तुति करके पश्चात् वहाँपर विराजमान श्रीनिर्ग्रन्थ गुरुके चरणकमलोंमें नमस्कारकर दम्पति अपने असाता वेदनीयके नाश होनेके निमित्त विनयपूर्वक इस प्रकार पूछने लगे—

हे स्वामी! आपके निकट शत्रु और मित्र सब समान है। मिथ्यात्वरूपी अंधकारमें अंध हुए जीवोंको ज्ञानाजन द्वारा सनेत्र करनेको आप ही समर्थ हैं। हम लोग तो कर्मके प्रेरे हुवे चतुर्गति-रूप संसारमें भटकरहे हैं, और इन्हीं कर्मोंके शुभाशुभ फलमें मोहके उदयसे इष्टानिष्ट कल्पना कररहे हैं। इसीलिये ही हमको सत्यार्थ मार्ग नहीं सूझता। हम लोग हीन शक्तिके धारक इस जड शरीरमें ही सुख व दुःखोंका अनुभव कररहे हैं। और इतने कायर होरहे हैं जो थोडी भी वेदना नहीं सह सकते, इसलिये इस रोगके प्रतीकारका कोई उपाय हो तो कृपाकर बताइये। तब मुनि बोले—हे पुत्री! सुनो।

॥ वसन्ततिलका छंद ॥

धर्मे मतिर्भवति किं बहुभाषितेन।
जीवे दया भवति किं बहुभिः प्रदानैः॥
शांति मनो भवति किं धनदे च तुष्टे।
आरोग्यमस्ति विभवेन तदा किमस्ति॥

अर्थात्–जिसकी बुद्धि धर्ममें है, तो बहुत कहनेसे क्या है ? जिसके अंतरंगमें जीवोंकी दया वर्तमान है, उसे और दानोंसे क्या है ? यदि संतोष चित्तमें है, तो कुवेरकी लक्ष्मीसे क्या है ? और शरीर नीरोग है तो और विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? और भी–

॥ इन्द्रवज्रा ॥

बुद्धेः फल तत्त्वविचारणं च, देहस्य सारं व्रतधारण च ।
अर्थस्य सारं किल पात्रदान, वाचः फल प्रीतिकर नराणाम् ॥

अर्थात्–बुद्धिका फल तो तत्त्वोंका विचार करना, देहका फल व्रत धारण करना, धनका फल पात्रदान करना और वाणिका फल हितमित वचन बोलना है। इसलिये हे पुत्री ! भगवानने जो दो प्रकारका धर्म कहा है एक अनागार–साधुका और दूसरा सागार–गृहस्थका सो भवसमुद्रके तटपर आये हुए भव्य जीवोंको समस्त दु.खोंसे छुडानेवाला है। इसलिये जो शीघ्र ही तिरनेकी इच्छासे चारित्रमोहके क्षयोपशम होनेपर अनागार व्रत धारण करते हैं वे कर्म शत्रुको जीतकर तद्भव भी मोक्षके अविनाशी सुखको प्राप्त करते हैं। परंतु शक्तिहीन पुरुष जो मोहके उदयसे सकल संयम धारण नहीं कर सकते वे देशसंयम–गृहस्थ धर्मको ही धारण कर लेते हैं। सो यहाँपर उसी गृहस्थ धर्मका स्वरूप कहते हैं।

प्रथम ही जीवोंको सत्यार्थ क्षुधादि १८ दोषरहित निरावरण जिनदेव, बाह्य अभ्यंतर परिग्रहसे रहित दिगंबर गुरु और अहिंसामई धर्मका श्रद्धान करना चाहिये। पश्चात् जीवादिक तत्त्वोंका स्वरूप समझकर उसके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करना चाहिये।

इसे व्यवहार सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शनका कारण कहते हैं। इसके सिवाय जो जीव अजीव आश्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्षादि तत्त्व कहे हैं, उनका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञानकर अजीव पुद्गलादि परद्रव्योंसे भिन्न अपने आत्मस्वरूपका श्रद्धान होना उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं, सो यह सम्यग्दर्शन शंकादिक आठ दोष, जाति रूपादि, आठ मद, कुगुरु कुदेव कुधर्म और इनके तीन सेवक ऐसे ६ अनायतन और लोक मूढता, देव मूढता व पाखंड मूढता इन २५ दोषोंसे रहित और निःशङ्कितादि आठ अंग सहित धारण करना चाहिये। इस प्रकार व्रत रहित श्रद्धानी पुरुषको सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

यही सम्यग्दृष्टि जब पाँच उदम्बर (बड, ऊमर, पीपर, पाकर, कठूंबर) और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) का त्याग करके जुवा मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्रीसेवन इन सातों व्यसनोंका तथा अभक्ष भक्षण और अन्यायरूप प्रवृत्ति-का त्याग करता है तब इसे प्रथम प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं।

और जब संकल्प करके त्रस जीवोंकी और निष्प्रयोजन स्थावर जीवोंकी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और अतिशय लोभका एकदेश त्याग करके उनके अतीचारोंको भी त्याग करता है तथा इन्हीं पाँच व्रतोंकी रक्षार्थ सप्त शील (तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) पालन करता है तब इसे दूसरी व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं। इसके सिवाय सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, रात्रिभुक्त त्याग, परिग्रहप्रमाण और उद्दिष्टत्याग, ये उत्तरो-त्तर विषय और कषायोंको क्रमसे घटानेवाली ९ प्रतिमा श्रावककी

और भी हैं जो यथाशक्ति धारण करना चाहिये* ।

यही श्रावकके मुख्य व्रत हैं, इसलिये जो इन व्रतोंको निर्दोष धारण करता है, उसका अन्य व्रत करना भी सार्थक है, अन्यथा वृथा कायक्लेश मात्र है। अतएव ए भव्यो! तुम प्रथम इन व्रतोंको धारण करो और फिर विधि सहित **सिद्धचक्र (नंदीश्वर=अष्टाह्निक) व्रत**को पालो, क्योंकि इस व्रतके प्रभावसे सर्व रोग शोक दूर हो जाते हैं ।

तब मैनासुन्दरीने विनयपूर्वक कहा—हे स्वामिन् ! कृपाकर इस व्रतकी विधि बताइये । तब स्वामीने कहा कि एक वर्षमें तीन बार कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ इन तीनो महीनोंमें शुक्लपक्षके अंतके आठ दिन अर्थात् अष्टमीसे पूनम तक यह व्रत करना चाहिये, सो **उत्तम** तो यह है कि आठ ही दिन उपवास करे । और **मध्यम**के वेला तेलादि अनेक भेदरूप हैं, इसलिये अपनी शक्ति अनुसार जितना हो सके वैसा अवश्य ही करना चाहिये। और इन उपवासके दिनोंमें गृहारंभ तथा विषय कषायोंसे अपने चितको रोककर निज शुद्ध आत्माका विचार करे और जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो (क्योंकि वीर्यांतराय तथा दर्शन और ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशमसे प्राप्त हुवा जो आत्मामें बल और भले प्रकारसे तत्व निर्णय करने रूप सम्यग्ज्ञान, उसीसे शुद्धात्माको अनुभवनमें स्थिरीभुत हो सकता है, अन्यथा ऐसा होना सहज नहीं है,) तो अपना समय धर्मध्यान, पूजन, भजन, स्वाध्याय, तत्वनिर्णय, धर्मोपदेश, सामायिक आदिमें वितावें; क्योंकि—

---

*विशेष स्वरूप रत्नकरंड श्रावकाचारादि आचार ग्रन्थोंपरसे जानना चाहिये।

" कषायविषयाहारत्यागो यत्र विधीयते ।
उपवासो स विज्ञेय शेष लंघनकं विदु" ॥

अर्थात्–विषय और कषायरूपी आहारका त्याग जब होता है उसे ही उपवास कहते हैं शेष तो लंघन ही कहा गया है ।

इस प्रकार जब आठ वर्ष पूरे हो जावें, तब विधिसहित उद्यापन करे, अर्थात् सप्तक्षेत्रोंमें जैसे जिन मंदिर, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, जिन शास्त्र लिखाना, पूजन विधान करना, तीर्थयात्रा करना, धर्मोपकरण बनवाना, धर्मोपदेश दिलाना, वस्तिकादि बनवाना इत्यादि कार्योंमें शक्ति प्रमाण द्रव्य खर्चे, चार प्रकारके संघमें मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओंको चार प्रकारके दान औषधि आहार शास्त्र और अभय दान देवे, दुःखित भुक्षितको करुणा कर दान दे, संतोषित करें, जहाँ जिनमंदिर न होवे वहाँ साधर्मी भाइयोंके धर्मसाधनके निमित्त जिन मंदिर बनवावे, शास्त्र लिखावे, विद्यालय बनवावे, वस्तिका (संयमियोंके रहने योग्य मुकाम) बनवावे, इस प्रकार उत्साहपूर्वक अतिचाररहित व्रत करनेसे और तो क्या क्रमशः कर्मका नाश होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है । इस प्रकार मैनासुंदरी और श्रीपाल राजाने मुनिके द्वारा व्रतकी विधि सुन सहर्ष स्वीकार किया और विनयसहित नमस्कार करके अपने स्थानको पधारे । और परस्पर प्रेमालाप करते हुए समय व्यतीत करने लगे । जब कभी राजाको उद्वेग हो जाता तो मैनासुंदरी, और मैनाको खेद होजाता, तो राजा श्रीपाल नम्र और मधुर शब्दोंमें प्रेमपूर्वक धैर्य देते, कभी तत्त्व चर्चा करते और कभी जिनेन्द्रके गुणोंमें आसक्त होकर स्तुति करते, इस तरह सुखपूर्वक

दम्पतिका समय व्यतीत होता था। सो ठीक ही है क्योंकि:—

" नरनारी दोनों जहा, विद्या बुद्धि निधान।
तिनके सुखको जगतमें, को कर सके वखान? ।"

बस इसी तरह कुछ दिन व्यतीत होनेपर कार्तिकका पवित्र महीना आया सो शुक्ल अष्टमीको मैनासुंदरी बड़े हर्ष सहित प्रासुक जलसे स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिर श्रीजिनमंदिरमें गयी, और विधिपूर्वक अष्टद्रव्यसे प्रभुकी पूजा करके आठ दिनकेलिये ब्रह्मचर्य सहित नंदिश्वरव्रत धारण किया। वह नित्यप्रति आठोंदिन भगवानकी पूजा करके **गंधोदक** लाती, और **सातसौ सखों सहित अपने पति श्रीपालके कुष्टसे गलित शरीरपर छिड़कती थी।** इस प्रकार श्रीपालके असाता कर्मका अंत और साता (पुण्य) का उदय होने पर बाह्य कारण उस सतीकी **सच्ची पतिसेवा,** प्रभुभक्ति तथा व्रतके प्रभावसे आठ ही दिनमें श्रीपाल और उनके सातसौ सखोंके **शरीरसे कोढ़ इस तरह निर्मूल होगया,** मान लो कि उन्हें कभी रोग हुआ ही नहीं था। और श्रीपालका शरीर **कामदेवके** समान चमकने लगा। अहहा देखो, व्रतका प्रभाव कि तत्क्षण ही सातसौ सखों सहित **राजा श्रीपालका कोढ़ बिलकुल चला गया।** ठीक है—

'ज्यों दीपककी ज्योतिसे, अधकार नश जाय।
त्यों जिनधर्म प्रभावसे, कठिन कर्म कट जाय।
जिन सुमरे व्यतर भगे, भूत पिशाच पलाहिं।
तो अचरज यामें कहा, रोग शोग नश जाहिं।
इस ही भव यश सुख लहे, परभवकी क्या बात।

बहुत कहा कहिये भविक! अनुक्रम कर्म नशात।
ताने सम्यग्दर्श युत, धारो सम्यग्ज्ञान।
पुनि सम्यक् चारित्र धर, करो स्वपर कल्याण।

इस प्रकार उनके असाता कर्म क्षय हुए, और वे दम्पति परम आनन्दसे सखों सहित अपना जीवन व्यतीत करने लगे। यथार्थमें स्त्रियोंका यही धर्म है, कि तन मन धनसे पति-सेवामें तत्पर रहें; क्योंकि कहा है—

पति सुख लख होवे सुखी, पति दुःख दुखित होय।
धन्य जनम उन त्रियनको, सति पतिव्रता सोय॥
देखो मैनासुंदरी, पायो फल अभिराम।
सुख सम्पति पाई सबहिं, पती हुवो ज्यों काम॥

---

(१०) श्रीपालकी माताका श्रीपालसे मिलना।

इस प्रकार असाता कर्मके अंत होनेसे मैनासुदरी श्रीपाल सहित देवोंकि समान दिव्य सुख भोगने लगी। ठीक है—रात्रिके पीछे दिन होता है। परिश्रमका भी फल अवश्य मिलता है। इनको ऐसा आनन्द हुआ कि निश वासर जाते मालूम नहीं होते थे। ठीक है—जिस कार्यके लिये परिश्रम किया जाय, और जब वह कार्य सिद्ध हो जाय, तो फिर किसको हर्ष नहीं मालूम होता है।? कहा है—

साता उदय न लखपरं, केतक बीतो काल।
उदय असाता एक क्षण, बीते जैसे साल।

परन्तु धन्य है वह सती मैनासुदरी जो केवल विषयोंहीमें मग्न नहीं हो गई थी किंतु वह धर्मको ही उभय लोकोंके सुखोंका

मुख्य साधन और परम्परा मोक्षका कारण जानती हुई बराबर सेवन करती थी। उसे यह निश्चय था कि यह सब विभूति जो प्राप्त हुई है सो केवल **धर्मका ही फल है**, इसलिए मुझे धर्मको छोड़कर केवल उसके फल अर्थात् अर्थ और काममें आसक्त नहीं होना चाहिए, क्योंकि **"मूलो नास्ति कुतो शाखा"** मूलके नाश होनेपर डाली कहाँ हो सक्ती है—यथार्थमें वे बड़े मूर्ख हैं जो मूलको नाशकर फलोंकी आशा करते हैं। कहा है—

ज्यों जल डूबत कोय, वाहन तज पाहन गहे।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छोड़ सेवत विषय॥

ऐसा समझकर जो नर बुद्धिमान हैं सो धर्मको नहीं विसारकर उसके अविरुद्ध अर्थ और कामको (कर्मफल समझकर) भोगते है। कहा है—

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग माँहि।
त्यों बुधजन सुख भोगवे, धर्म विसारे नाँहि॥

यह बात तो यहीं रही। अब श्रीपालजीकी माता कुंदप्रभाका हाल कहते हैं। माता कुंदप्रभा पुत्रके वियोगसे तथा पुत्रकी अस्वस्थ अवस्थाका विचार करती हुई अत्यन्त दुःखित रहा करती थी। कभी दो दो दिन तक भी भोजन नहीं करती थी। चिंतासे उसका शरीर क्षीण हो रहा था। क्योंकि **माताका प्रेम पुत्रपर अनन्य ही होता है**। वह बालकको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती है। उसके दुःखको अपना दुःख समझती है, और उसे सुखी देखकर अपना भी दुःख भूल जाती है। चाहे पुत्र भला बुरा कैसा भी क्यों न हो? वह चाहे माताको कितना

भी कष्ट क्यों न दे? परन्तु माता उसे सदैव प्रेमदृष्टिसे ही देखती है। वे पुरुष जो अपनी माताओंको किसी प्रकार भी कष्ट पहुँचाते हैं, यथार्थमें उनके समान कृतघ्नी संसारमें और कोई नहीं है। इसप्रकार माता कुंदप्रभाको अपने पुत्रकी चिंता करते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये; परंतु क्या करे निरुपाय थी। यद्यपि पुत्रका मोह बहुत था, यहाँ तक कि मोहवश शरीर अत्यन्त क्षीण होगया था; परंतु वह प्रजावत्सल रानी इस दशामें भी श्रीपालको बुलाकर पास रखना नहीं चाहती थी; क्योंकि जिस कार्यसे केवल अपना मन प्रफुल्लित हो; परंतु सर्वसाधारण प्यारी प्रजाको दुःख पहुँचे, वह काम उत्तम पुरुष कभी नहीं करते हैं। दूसरोंके पुत्रोंको मारकर या अन्य प्रकारसे उन्हें पुत्र आदि इष्ट जनोंके वियोग जनित दुःख पहुँचाकर संसारमें कोई भी पुत्र लाभ नहीं कर सकता है। निदान एक दिन माता स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिन श्री जिन मंदिर गई, और प्रथम ही श्रीजिन भगवानकी वंदना—स्तुतिकरके वहां बैठे हुए श्रीमुनिराजको नमस्कारकर विनयपूर्वक अपने पुत्रकी कुशल पूछने लगी। तब उन परमदयालु शत्रु मित्रको समान जाननेवाले परम दिगम्बर गुरुरायने अवधिज्ञानसे श्रीपालके उज्जैन (मालवा) जाने, वहाँके राजा पहुपालकी पुत्री मैनासुंदरीके साथ संबंध होने, और कुष्ट व्याधिके दूर होनादि आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त रानी कुंदप्रभाको कह दिया। सो अपने पुत्रको स्वास्थ्य लाभ और स्त्री लाभकी वार्ता सुनकर रानी प्रसन्नचित्त होकर घर आई, और अपने देवर वीरदमन (वर्तमान राजा जो कि इस समय श्रीपालकी जगह राज्य करते थे)

के पास आकर अपने पुत्रसे मिलनेकी आज्ञा मांगी और अति उमंग सहित यथासंभव शीघ्रतासे उज्जैनको प्रयाण किया।

इस समय कुंदप्रभा रानीका चित्त पुत्रसे मिलनेके लिए बहुत ही आतुर हो रहा था, इसलिए दिन रातका कुछ भी विचार नकर बराबर प्रयाण करती हुई माता कुछ ही दिनोंमें उज्जैनके उद्यानमें पहुँच गई। ठीक है। एक तो सहज ही इष्टके मिलनेकी चाह हुआ करती है, फिर तो यह निज पुत्रसे मिलनेका उत्साह था। सो इसमें तो कहना ही क्या है? क्योंकि माताको पुत्रसे प्यारा और कुछ भी नहीं होता। निदान, वहाँ पहुँचकर नगर बाह्य अति उत्तम महल देखकर रानीको विस्मय हुआ सो वहाँसे जाते हुए एक वीर (योद्धा या सिपाही)से पूछा—यह किस भाग्यवानका महल है? तब उस वीरने कहा—माताजी! यहाँपर न मालूम कहाँसे एक कोढ़ी पुरुष जिसका नाम श्रीपाल था बहुतसे कोढ़ियों सहित आया था, सो वह बहुत दिनों तक इसी उद्यानमें रहा। एक दिन यहांका राजा पहुपाल वनक्रीड़ाके निमित्त कहींसे भ्रमण करता हुआ यहाँ आ निकला और उस कोढ़ीको देख मोहित होकर उससे गले लगकर मिला, और चलते समय अपनी परम गुणवती रूपवती सुशील कन्या मैनासुन्दरी भी इसे देनेको कह गया। यद्यपि मंत्री पुरोहित आदि सभीजनोंने राजाको इसके विरुद्ध समझाया, परन्तु होनी अमिट है, राजाने किसीकी बात न मानी और बड़े हर्ष सहित उस कोढीको बुलाकर अपनी पुत्रीके साथ लग्न कर दिया। इस कृत्यसे सब प्रजा राजासे अप्रसन्न हो गई थी, परन्तु करती ही क्या?

कुछ वश नहीं था। भला जब स्वामी ही प्रसन्न हैं तो नौकर वा आश्रितजन कर ही क्या सकते हैं? यद्यपि स्वजन पुरजन सब ही इस अनुचित सम्बन्धसे दुःखी हैं तथापि धन्य है वह राजपुत्री कि जिसके महां देवीने अपने शुद्ध मन वचन कायसे, परिश्रम पूर्वक सब प्रकारसे सुखसे केवल आनन्द ही बरसता था। निदान, व्याह होनेके पश्चात् उस सती शीलवतीने अपने पतिकी निःसीम सेवा की और अर्हंत देव निर्ग्रंथ गुरु तथा दयामई धर्ममें अपूर्व भक्ति की तथा सिद्ध चक्रव्रतको सम्यग्दर्शन तथा ज्ञान सहित धारणकर विधियुक्त पालन किया। सो अब उसके शील व जिनधर्मके प्रभावसे वही कोढ़ी कामदेवके समान अत्यन्त रूपवान् हो गया है और उसके सब साथियोंका भी रोग इस तरहसे चला गया है, मानो कभी हुआ ही नहीं था। और अब तो उसके सुख व वैभवका वर्णन मैं कर ही क्या सकता हूं? सो हे माता! यह उत्तंग सुंदर महल उसी महा भाग्यशाली पुरुषका है।

यह सुनकर रानी प्रसन्न हो उस महलके द्वारपर गई और नियमानुसार द्वारपालसे राजाको खबर देनेके लिये कहा। द्वारपालने शीघ्र ही श्रीपालसे यह संदेशा कह दिया। श्रीपाल माताका आगमन सुनकर अपनी प्रिया मैनासुंदरीसे कहने लगे कि हे प्रिये! हमारी माता आई हैं, सो उनका आदरसत्कार भले प्रकार करना चाहिए। किसी प्रकारसे भी उनको खेदका कारण न होने पावे। यह कहना श्रीपालजीका तो न्यायसंगत था, परन्तु मैनासुंदरीके लिये तो वास्तवमें निरर्थक ही था; क्योंकि उसमें उत्तम

स्त्रियोंके सम्पूर्ण उत्तम गुण स्वभावसे ही विद्यमान थे। वह जानती थी कि किस पुरुषसे कैसे व्यवहार करना चाहिए, इसलिये पतिकी आज्ञाको शिरोधार्यकर हर्ष सहित मंगल कलश देकर स्वामी सहित सासुकी अगवानीके लिए गई, और बड़ी **विनय** सहित सासुको नमस्कारकर लज्जायुक्त हो उनके पीछे खड़ी हो गई। श्रीपालने माताके पादारविंदोंको स्पर्शकर मस्तक झुकाया। तब माताने उन दोनोंको पुत्र पुत्रीवत् प्रेमसे गले लगा लिया, और शुभाशीर्वाद दिया। अत्यत मोह व बहुत दिनमें विपत्तिके बाद मिलनेके कारण परस्पर नेत्रोंमेंसे आँसु टपकने लगे, और **हर्ष रोमांच** हो आये और परस्पर कुशलक्षेम पूछने लगे। तब श्रीपालने अपने यहा आने और मैनासुदरीके साथ व्याह सम्बन्ध होने, उसके निर्दोष **अष्टाह्निका व्रत** पालने और सच्ची सेवा करनेके कारण कुष्ट व्याधिके क्षय होनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त आद्योपान्त मातासे कह सुनाया। तब माता कुदप्रभाने वहू मैनासुंदरीको यह आशीर्वाद दिया।

हे पुत्री! तू आठ हजार रानियोंमें पट्टरानी हो, और यह श्रीपाल कोटीभट्ट चिरजीव रहे, तथा पहुपाल राजा जिसने यह उपकारकर निज पुत्रीरत्न मेरे पुत्रको दिया, सो बहुत कीर्ति व वैभवको प्राप्त हो।"

माताका यह शुभाशीर्वाद सुन वहू और बेटाने अपना २ मस्तक झुकाया और विनीत भावसे कहने लगे—हे माता, यह सब आपका ही आशीर्वाद है कि हमने आज आपके दर्शनसे सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त किया। धन्य है आजकी घड़ी व दिन कि हमें

आपके शुभ वचन सुननेको मिले । आपके पग प्रक्षालनेसे हमारे हाथ पवित्र हुए, दर्शनसे नेत्र पवित्र हुए, वार्तालापसे कर्ण पवित्र हुए, और आपके शुभाशीर्वादसे मन पवित्र हुआ । तात्पर्य हम लोग आज आपके दर्शनसे कृतकृत्य हुए हैं, इत्यादि परस्पर वार्तालाप करके सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे । एक दिन वे श्रीपाल और मैनासुंदरी स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिर शृंगारपूर्वक अति उत्साहसे जिनमंदिरको गये । वहां पर श्रीजिनदेवका अष्ट प्रकारसे पूजनकर अपना अहोभाग्य मानते हुए धर्मश्रवणकी इच्छासे यहाँ वहां देखने लगे । तो वहांपर साक्षात् मोक्षमार्गमें स्थित श्री महामुनिको देखकर अति प्रसन्न हुए और नमस्कार करके स्तुति करने लगे—

जय जय मुनिवर गुणहिं निधान । जय करुणासागर परधान ॥
जय जय अभयदान दातार । जय जय भवदधि तारनहार ॥
जय जय चरण आचरण धीर । जय जय मोह दलन वरवीर ॥
जय जय क्षमावंत सुख धाम । जय जय शिव रमणी पति राम ॥
जय जय सहन परीषह देह । जय जय दश लक्षण गुण गेह ॥
जय जय रत्नत्रय व्रत धरन । जय जय बारह विधि तप करन ॥
जय जय श्रीगुरु दीन दयाल । अब तो शरण लही श्रीपाल ॥

इस प्रकार स्तुतिकर वे दोनों वहां विनय सहित यथायोग्य स्थानमें बैठ गये । यथार्थमें जो कोई भी शुभ इच्छा की जाती है वह अवश्य ही सफल होती है । कहा है—

उपजे शुभ इच्छा मन जोई, सो निश्चय कर पूरण होई ॥
पर न अशुभ चिंते सिद्ध होई । तासे अशुभ न चिंतो कोई ॥

इस बातको यहां छोडकर राजा पहुपालका वृत्तान्त कहते हैं। एक दिन राजा पहुपालको अपनी पुत्रीके दु:खकी बात याद आ गई सो वह अपने हठपूर्वक किये हुवे दुःकृत्यपर पश्चात्ताप करने लगा और इसलिये उसका शरीर मारे चिंताके दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। ठीक है—

(चिंता चिता समान, बिन्दुमात्र अंतर लखो।
चिता दहति निःप्राण, चिंता दहति सजीवको॥)

यह दशा देखकर उसकी स्त्री निपुणसुंदरी बोली—हे नाथ! आपका शरीर दिनोंदिन क्षीण क्यों होता जाता है? चित्त उदास रहता है, आपका मुखकमल पीला और कांतिहीन होता जाता है, इसका कारण क्या है? कृपाकर कहिये। यद्यपि राजाने अपने मनकी बात इस विचारसे कि अभी तो मैं ही दु:खी हूं और जो रानीसे कहूंगा तो वह भी दुःखित हो जायगी, छुपाना चाहा, परन्तु अपनी प्राणवल्लभासे छुपा नहीं सका। ठीक है—पुरुष यदि अपने आपको किसी प्रकार छिपाना चाहे परन्तु संसारमें जो चतुर स्त्रियां है वे तुरन्त ही उनकी चेष्टासे, वचनोंसे, रहनसहनसे अपने पतिके मनका भाव जानकर अपने हाव, भाव, विभ्रम, कटाक्ष और रसीले ललित शब्दों वा कार्यकुशलतासे प्रगटरूपसे कहला ही लेती हैं। यथार्थमें वे स्त्रियां स्त्रियां ही नहीं कही जा सकती हैं कि जिनको अपने पतिके सुख दुःख व उनके मनका भाव जाननेकी शक्ति नहीं है, या जो जाननेकी चेष्टा करती ही नहीं हैं। स्त्री पुरुषकी अर्द्धांगि कही जाती है, इसलिये यदि एक

अंगको पीड़ा होवे तो दूसरेको अवश्य ही खबर पडना चाहिये। निदान, राजाने अपनी चिंताका हाल रानीसे कह दिया। तब रानीने भी दुःखित हो विनीत वचनोंसे कहा—हे स्वामी! संसारमें होनहार अमिट है। कर्म जीवके साथ ही लगे हैं और सब जीव संसारमें स्वकृत कर्मोंका फल भोगते हैं। पुत्रीका उदय ऐसा ही था सो उसमें आप न मैं, व स्वजन, परजन आदि कर ही क्या सकते थे? हम सब तो निमित्तमात्र हैं, इसलिये अब इस चिंतासे कुछ लाभ नहीं है। चितासे तो केवल शरीरका शोषण और कर्म बन्ध ही होगा इसलिए चिंताको त्याग करना ही उचित है।

इस प्रकार रानीने अपने पतिको धैर्य बधाया। यद्यपि रानी-को भी अपनी पुत्रीका दुःख कुछ कम न था, क्योंकि पितासे अधिक प्यार पुत्र और पुत्रियोंपर माताका होता है, परन्तु उस समय यदि रानी भी शोक करने लग जाती तो किस प्रकार राजाका प्राण बच सकता था? इसलिये ही रानीने अपने भावको प्रगट न कर राजाको धैर्य बधाया। ठीक है **पति-पत्नीका यही धर्म है कि जब चिंता व दुःख आवे तो पति निवारे और जब पतिको कोई चिंता व दुःख आवे तो पत्नी निवारण करे।** धन्य है वे स्त्रियां जो विपतिके समयमें अपने पतिको मंत्रीकी तरहसे सलाह और माताकी तरहसे धैर्य देवें तथा मित्रकी तरहसे प्रत्येक कार्यमें सहायता दें और स्वप्नमें भी छायाके समान कभी अलग न होवें। वह बोली—हे स्वामी! दिनके बाद रात्रि और रात्रिके बाद दिन अवश्य होता है। इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मोंका भी चक्र है। जो उदय

आता है उसकी निर्जरा भी नियमसे होती है।) फिर यह भी किसे मालूम है कि किसके कर्ममें क्या लिखा है? इसलिए अब इस चिंताको छोड़ और श्रीगुरुके पास चलकर इस संशयका निरा· करण करना चाहिए। इस प्रकार धैर्य देकर रानीने स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिरे और श्री **जिनमंदिर**को गई। प्रथम ही श्रीजिनको मन वचन काय सहित अष्टांग नमस्कारकर वहाँ बैठे हुए श्री· गुरूको नमस्कारकर यथायोग्य स्थानमें बैठी और ज्यों ही कुछ पूछनेके लिए मुँह खोला था कि उसकी दृष्टि वहींपर बैठे हुए **श्रीपाल** और निज पुत्री **मैनासुंदरी**पर पडी। सो देखते ही मनका भाव बदल गया। तुरत चेहरा लाल हो गया, आँखोंमें क्रोध झलकने लगा, दीर्घ उस्वास लेने लगी, और मैनासुंदरीको मन ही मन धिक्कारने लगी। और सोचने लगी कि यदि यह पुत्री होते ही मर जाती या गर्भसे गिर जाती तो अच्छा होता; क्योंकि समुद्र सरीखे निर्मल मेरे कुलमें कलंक तो न लगता। हाय पुत्री! तूने यह क्या अनर्थ किया, जो स्व–पतिको छोड़ अन्य पुरुषको लिए बैठी है? तुझे कुछ भी लाज नहीं आती है? तू तो बड़ी चतुर थी परतु मुझे यह मालूम नहीं था कि ये सब केवल दिखाऊ थीं। यदि ऐसा ही था तो जब तेरे पिताने तुझे वर माँगनेको कहा था तभी क्यों नहीं सुरसुंदरीके समान माँग लिया। सो तब तो बड़ी बड़ी चतुराईकी बातें बनाई थीं अब न जाने वह बुद्धि और चतुराई कहाँ चली गई? इत्यादि विचारते२ रानीकी आँखोंसे आँसू टपकने लगे। ठीक है–भला संसारमें ऐसे कौन मातापिता हैं, जो अपने पुत्र व पुत्रियोंको व्यभिचारी

देखकर दुःखी न हों, अर्थात् सभी होते हैं। तब मैनासुंदरीने अपनी माताको विलखित बदन देखकर उसके मनके भावको समझलिया और इसलिये तुरंत अपने पति सहित उसके पास जाकर बड़े प्रेम व विनय सहित प्रणाम किया; परंतु जब माताने इसपर कुछ ध्यान न दिया, तब उसने निश्चय कर लिया कि अवश्य ही पूज्य माताको कुछ मेरे विषयमें संशय है। सो मधुर वचनोंसहित नम्रतापूर्वक लज्जासे मस्तक झुकाकर बोली-हे माता! अपना संदेह छोड़ दीजिए। यह आपके जमाई वही कोढ़ी राजा श्रीपाल है, जिनके साथ आपने मुझे परणाया था। धर्मके प्रभावसे अशुभ कर्मका क्षय होनेसे इनका ऐसा कामदेवके समान स्वरूप होगया है। इस प्रकार मैनासुन्दरीने बहुत कुछ कहा; परतु रानीको विश्वास न आया।

वह बोली-अरी पुत्री! तू क्यों ऐसी निर्लज्ज हुई? मुझे झटमूट बहकाती है। चाहे अग्नि शीतल हो जाय और सूर्य पूर्वसे पश्चिममें उगने लगे, तब भी मैं तेरी बात सत्य नहीं मान सकती हूँ। सासुके ऐसे वचन सुनकर श्रीपालने नम्रीभूत हो कहा-हे माता! निःसंदेह आपकी पुत्रीके वचन विश्वासनीय है। धन्य है आपका कुल कि जिसमें यह गुणनिधान स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ और धन्य है इसके अखंड शील और व्रतका माहात्म्य कि जिसके प्रभावसे सातसौ सखों सहित मेरा कोढ़ मूलसे नाश हो यह सुगंधित सुंदर शरीर हो गया है। मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ, इसलिये आप अपना संदेह दूर कीजिए।

जंवाईके मुखसे ऐसा वचन सुनकर निपुणसुंदरीको संतोष हुआ और हर्षसे रोमांच हो आये। प्रेमकी दृष्टिसे लड़की और

दामादको देखकर मन ही मन प्रफुल्लित होने लगी; परन्तु इस आनन्दको उसने अकेले ही अकेले भोगना उचित न समझकर अपने पतिको भी इसका भाग देनेकी इच्छासे शीघ्र ही गुरुको नमस्कारकर राजमहलको प्रयाण किया और सीधी पतिके ही निकट जाकर सब वृतान्त निवेदन किया। राजा पहुपाल यह शुभ समाचार सुनकर अति प्रसन्न हुआ। सो ठीक है—जिस बातकी चिंता हो और यदि उसी चिंताके मिटनेकी बात सुनाई दे, या चिन्तित कार्य सिद्ध हो जाय तो किसको खुशी नहीं होती है? राजा तुरन्त स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिर पुत्री व जँवाईको देखनेकी आतुरतासे शीघ्र ही जिनालयमें पहुंचा और प्रथम ही श्रीजिनकी वंदनाकर गुरुको नमस्कार किया। पश्चात् पुत्रीकी ओर देखा, तो पुत्रीने विनयसहित पिताको प्रणामकर लज्जा से नम्रीभूत हो मस्तक झुका लिया। राजाने पुत्रीको गले लगाया। और परस्पर दोनोंने अतिरुदन किया। राजाका मुँह संकोचसे कुम्हला गया, इतनेमें जँवाईने आकर स्वसुरको प्रणाम किया। राजाने इन्हें भी प्रेमपूर्वक कंठसे लगा लिया। परस्पर कुशल पूछनेके बाद राजा पहुपाल अपने कृत्यकी निंदा और पश्चात्ताप करने लगा। तब उस दम्पतिने राजाको विनयपूर्वक समझाकर—धैर्य बँधाया। राजाने पुत्रीसे उसकी पूर्व व्यथा और उसके दूर होनेका वृत्तान्त पूछा। तब पुत्रीने आद्योपान्त कह सुनाया। यद्यपि इससे राजाको बहुत कुछ शांति मिली, परंतु मनकी शल्य निःशेष न हुई। ठीक है—कष्टसाध्य वस्तुके सहज सिद्ध हो जानेसे एकदम शंकाका परिहार नहीं हो जाता, जबतक कि ठीक ठीक पता न मिले; इसलिये

राजा शंका निर्मूल करनेके हेतु श्रीगुरुके पास गये और विनय सहित नमस्कार कर पूछने लगे—

हे धर्मावतार दयालु प्रभु! श्रीपालके कोढ जानेका वृत्तांत कृपाकर कहो। तब श्रीगुरुने सब वृतांत आद्योपांत अवधिज्ञानके बलसे सुना दिया। सुनते ही राजाकी शल्य निःशेष हो गई। इस प्रकार राजा पहुपाल अपनी पुत्री और जँवाई सहित गुरुको नमस्कार-कर निज स्थानको गया, और दोनोंको स्नान कराकर अमूल्य वस्त्रा-भूषण पहिराए तथा अनेक प्रकारसे पुत्री और जँवाईकी प्रशंसा व सुश्रूषा की। इस तरह वे परस्पर प्रेमपूर्वक अपना अपना समय आनन्दसे बितानें लगे। हे सर्वज्ञ वीतराग दयालु प्रभु! जैसे दिन **श्रीपाल व मैनासुंदरीके फिरे ऐसे ही सबके फिरें॥**

—⋙•⋘—

(११) उज्जनीसे श्रीपालका गमन।

श्रीपालको प्रिया सहित उज्जनीमें रहते हुए बहुत दिन हो गये। क्योंकि आनन्दमें समय जाते मालूम नहीं होता था। एक दिन वह दोनों रात्रिको सुखनींद ले रहे थे कि श्रीपालकी नींद अचानक खुल गई और उनको एक बड़ी भारी चिंताने घेर लिया। वे पड़े पड़े करवटें बदलने और दीर्घ उस्वास लेने लगे। भला, ऐसी अवस्था जब पतिकी हो गई, तब क्या स्त्रीको निद्रा आसकती थी? नहीं, कदापि नहीं। एक अंगकी पीडा दूसरे अंगको अवश्य ही होती है। वह पतिपरायणा सती तुरन्त ही जागी और पतिके पैर पकड़कर मसलने तथा पूछने लगी–हे नाथ!

चिंताका कारण क्या है ? सो कृपाकर कहो। क्या राजाने कुछ कटु वचन कहा है ? या स्वदेशकी याद आ गई है ? या किसीने आपके चित्तको चुरा लिया है ? अथवा ऐसा ही कोई और कारण है ? हे प्राणाधार ! आपको चिंतित देख मुझे अत्यन्त चिंता हो रही है।

तब श्रीपालने बहुत संकोच करते हुए कहा-हे प्रिये ! और तो कोई चिंता नहीं है। केवल यही चिंता है कि यहां रहनेसे सब लोग मुझे राजजँवाई कहते हैं और मेरे पिताका नाम कोई भी नहीं लेता है, इसलिए वे पुत्र जिनसे पिताका कुल व नाम लोप हो जाय, यथार्थमें पुत्र कहलानेके योग्य नहीं हैं। इसी बातका दुःख मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है। क्योंकि कहा है-सुता और सुतके विषै, अन्तर इतनो होय, वह पर वश बढावती, वह निज वंश हि सोय। जो सुत तज निज स्वजन पुर, रहे स्वसुर गृह जाय, सो कुपूत जग जानिए, अति निर्लज्ज बनाय।

इसलिए हे प्रिये ! अब मुझे यहां एक २ क्षण बर्ष बराबर बीत रहा है। बस, मुझे यही दुःख है। सुनकर मैनासुन्दरीने कहा-हे नाथ ! यह बिलकुल सत्य है। क्योंकि कहा है-

भाई रहे बहिनके तीर। बिन आयुध रण चढ़े जो धीर ॥
धन बिन दान देन जो कहे। अरु जो जाय सासरे रहे ॥
हंस बसे पोखरी जाय। केहरि बसे नगरमें आय ॥
सती तने मन विकलप रहे। रणसे सुभट भागवे कहे ॥
बोले काग आमकी डाल। मान सरोवर बगुला चाल ॥

कुँमर बसे सिंह वन माँहि। पर त्रियसों जो हँसी करॉहि ॥
मूरख बाँचे महापुराण। कुल भामिन गह खोटी बान ॥
इतने जन जग निंदा लहैं। ऐसे बडे स्याने कहैं ॥

इसलिए आपका विचार अति उत्तम है। प्रत्येक मनुष्यको अपने कुल, देश, जाति, धर्म व पितादि गुरुजनोंके पवित्र पवित्र नामको सर्वोपरि प्रसिद्ध करना चाहिए. क्योंकि **पुत्र ही कुलका दीपक कहा जाता** है। जिन पुत्रोंने अपने जाति, कुल, धर्म देश व पितादि गुरुजनोंके नामका लोप कर दिया यथार्थमें वे पुत्र केवल उस कुलके कलंक ही हैं, इसलिए हे स्वामी ! यहाँसे चतुरंग सैन्य साथ लेकर अपने देशको चलिए और सानन्द चिंता मेटकर स्वराज। भोगिए।

अहा ! धन्य मेनासुंदरी कि जिसने पतिके सद्विचारमें अपने विचार मिला दिये। यथार्थमें वे ही स्त्रियाँ सराहनीय हैं जो पतिकी अनुगामिनी हों। अन्यथा जो स्त्रियाँ स्वामीकी आज्ञाके प्रतिकूल हैं वे केवल वेढीकी तरहसे दुःखरूप भयानक बंधन हैं। कहा है:—

पति आज्ञा अनुसार जो, चले धन्य वह नारि।
अरु पति विमुख कुनारि हैं, जैसे तीक्ष्ण कुठारि ॥

अपनी प्रियाके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बोले—चन्द्रवदने ! आपने कहा सो ठीक है, परंतु क्षत्री कभी किसीके सामने हाथ नीचा, अर्थात् याचना करना नहीं चाहते हैं। क्योंकि प्रथम तो माँगना ही बुरा है और कदाचित् यह भी कोई करे, तो ऐसा

कौन कायर व निर्लोभी पुरुष होगा जो दूसरोंको राज्य देकर आप पराश्रित हो जीवन व्यतीत करे ? संसारमें **कनक और कामनी** कोई भी किसीको खुशी २ नहीं सौंप देता है। और यदि ऐसा भी हो तो मेरा पराक्रम किस तरह प्रगट होगा ? यथार्थमें अपने बाहुबलसे ही प्राप्त किया हुआ ही राज्य सुखदायक होता है। दूसरे जहाँतक अपनी शक्तिसे काम नहीं लिया, अर्थात् अपने बलकी परीक्षाकर उसको निश्चय नहीं कर लिया वहाँतक राज्य किस आधारपर चल सकता है ? **तीसरे** शक्तिको काममें न लानेसे कायरता भी बढ़ जाती है। कहा है— **विद्या अभ्यासकारणी** होती है। इसलिए पुरुषको सदैव सावधान ही रहना उचित है। घरमें आग लगने पर कुवा खुदाना वृथा है। ऐसे ही शत्रुके आजाने पर शक्तिकी परीक्षा करना व्यर्थ है। इसलिए हे ! प्रियतमे ! मैं विदेशमें जाकर निज बाहुबलसे राज्यादि वैभव प्राप्त करूँगा। तुम आनन्दसे अपनी सासुकी सेवा माताके समान करना और नित्य प्रति श्रीजिनदेवका वंदन स्तवनादि षट् कर्म्मोंमें सावधान रहना, पंचाणुव्रत मन वचन कायसे पालन करना, किसी प्रकारकी चिन्ता न करना। पतिके ये वचन उस सतीको यद्यपि दुःखदायक थे और वह स्वप्नमें भी पतिविरह सहन करनेके लिये अत्यन्त कायर थी, परंतु जब उसको यह निश्चय हो गया कि अब स्वामी नहीं मानेंगे, किन्तु अवश्य ही विदेश जांयगे, तो इस समय इनको छेड़नेसे इन्हें दुःख होगा, और यात्रामें विघ्न आवेगा। इसलिए छेड़छाड करना अनुचित है ऐसा सोचकर उसने धीमे स्वरसे कहा—

" प्राणाधार ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है; परंतु इस अबलाको पुन. आपके दर्शन कब मिलेंगे, सो निश्चित रीतिसे बताइये जिसके सहारे व आशापर चित्तको धैर्य देकर संतोषित किया जाय " । तब श्रीपालजीने कहा–" प्रिये ! तुम धैर्य रक्खो मैं बारह वर्ष पूर्ण होते ही, इसी अष्टमीके दिन आकर तुमसे मिलूंगा । इसमें किञ्चित् भी अन्तर न समझना " यह सुनकर मैनासुदरीने कहा–" हे नाथ ! यद्यपि मैंने अपशुकन व आपका चित्त खेदित होनेके भयसे विना आनाकानी किये ही आपका जाना स्वीकार कर लिया है, और स्त्रीका धर्म भी यही है कि पतिकी इच्छा प्रमाण प्रवर्ते, परंतु संसारमें मोह महाप्रबल है, इसलिये मेरा चित्त वारंवार अधीर होजाता है । अर्थात् आपके चरणकमल छोडनेको जी नहीं चाहता । यदि आप इस दासीको भी सेवामें ले चलें, तो बड़ा उपकार हो । कारण, बारह वर्ष क्या, दासी तो एक पल भी विरह सहनेको असमर्थ है । ऐसी नम्र प्रार्थनाकर स्वामीकी ओर आशावती हो यह प्रतीक्षा करने लगी, कि स्वामी या तो मुझे साथ ले चलेंगे या अपने जानेका विचार बंद कर देंगे; परंतु ऐसी आशा करना उसका निरर्थक था । क्योंकि बड़े पुरुष जो कुछ विचार करते हैं, वह पक्का ही करते हैं, और उसे पूरा करके ही छोडते है । कहा भी है–

यदि महज्जन निजवचन, करें न जो निर्वाह ।
तो उनमें अरु लघुनमें, अन्तर सूझे नांह ॥

निज प्रियाको मोहातुर देख श्रीपाल बोले–प्रिये ! तुम अधीर मत होओ, मैं अवश्य ही अपने कहे हुए समयपर आ जाऊंगा ।

संसारमें जीवोंका परम शत्रु यह मोह ही है। जिसने इसको जीता है वे ही सच्चे सुखी है, और अधिक क्या कहा जाय ? निश्चयसे यदि देखो कि दुःख कोई वस्तु है तो वह मोहके सिवाय और कुछ भी नहीं है। अर्थात् मोह ही दुःख है। यही इष्टानिष्ट बुद्धि कराकर प्राणियोंको नाना प्रकारके नाच नचाता है, इसलिये इसका परिहार करना ही उत्तम पुरुषोंका काम है, सो चिंता न करो। मैं उद्यमके लिये जा रहा हूं। उद्यम करना पुरुषका कर्तव्य है। उद्यमहीन पुरुष संसारमे निंद्य और दुःखका पात्र होता है। उद्यमसे ही नर सुर और क्रमशः मोक्षका भी सुख प्राप्त होता है। जो उद्यम नहीं करते उसका जन्म संसारमें व्यर्थ है। कहा है---

'धर्मार्थकाममोक्षाणां; यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्यैव, तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

अर्थात्—धर्म अर्थ और काम व मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंमेंसे जिसने एक भी प्राप्त नही किया उसका जन्म बकरेके गलेमें लटकते हुए पयरहित स्तनके समान निरर्थक है। इसलिये मोह त्यागकर मुझे अनुमति दो।")

तब वह सती कुछ धैर्य धरकर बोली—हे स्वामिन् ! मुझे भी ले चलो। तब श्रीपाल बोले—" प्रिये ! परदेशमें विना सहाय व विना ठिकाने एकाकी स्त्रीको लेजाना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रथम तो लोग अनेक प्रकारकी आशंकाएँ करने लगेंगे, और जिन देशोंमें हम लोग सर्वथा अपरिचित हैं वहाँपर हमारा सहायी कौन ? दूसरे जब कि मै उद्यमके अर्थ ही विदेश जा रहा हूँ तो

वहाँ स्त्रीको संग रखकर उद्यम करना " गधेके सींगवत् " असंभव है। हाँ, तीर्थयात्रा इत्यादिमें होता तो ठीक भी था। पुरुषको चाहिये कि परदेशमें जब तक भलीभाँति परिचय न हो जाय और उत्तम व्यापार आजीविका आदि निश्चित व स्थिर न हो जाय तथा जहाँपर स्वरक्षा न हो वहाँपर स्त्रियादिको कभी साथ न ले जाय। किन्तु उन्हें अपनी माता पिता आदि बड़े जनोंकी रक्षामें छोड़ जाय अथवा उनके माता पिताके घर (यदि अपने घरमें कोई न हो तो) भेज दे। और पश्चात् उक्त बातों-को निश्चय करके उसे बालबच्चों सहित ले जाय। हाँ ! यह बात जरूरी है कि समयानुसार खबर देते लेते रहें। सो हे प्रिये ! मैं तो शीघ्र ही आनेवाला हूँ ? तू चिंता मत कर।

निदान मैनासुंदरी उक्त सिखामन सुनकर बोली " हे स्वा-मिन् ! यदि आप जाते ही हैं और दासीकी विनती नहीं सुनते, तो भी कुछ हानि नहीं है, परंतु एक प्रार्थना अवश्य है कि इस दासीसे दासत्व करानेका विचार सदैव ध्यानमें रखियेगा और पंच परमेष्टीका ध्यान स्वप्नमें भी न भूलियेगा क्योंकि ये ही पंच परमेष्टी लोकमें मंगलोत्तम और शरणाधार हैं। तथा सिद्धचक्रका आराधन भी सदैव कीजियेगा। अपनी माता व मित्रोंको नहीं भुलाइयेगा। मिथ्या देव, गुरु और धर्मका विश्वास न कीजियेगा। ये ही जीवके प्रबल शत्रु हैं। जिनदेव, निर्ग्रन्थगुरु और अहिंसाधर्म ही तारनेवाले हैं। विशेष बात एक यह और है कि—

" नारि जानि अति ही चपल, कीजो नहिं विश्वास।
जेठी मा लहुरी बहिन, लघु सुता गिन तास ॥ "

अर्थात्—बड़ीको माता, बराबरवालीको बहिन और छोटी स्त्रियोंको बेटीके समान समझियेगा। परदेशमें नाना प्रकारके ढोंगी धूर्त भेषी रहते है, इसलिये सोचविचारकर ही कार्य कीजियेगा। स्वामिन्! मै अज्ञान हूँ, ढीठ होकर आपके सन्मुख यह वचन कहता हूं, नहीं भला मेरी क्या शक्ति जो आपको समझा सकूं? क्षमा कीजिये। एक बात यह और कहे देती हूँ कि यदि अपनी प्रतिज्ञापर बारह वर्ष पूर्ण होते ही आजहीके दिन (अष्टमी) तक आप न आइयेगा, तो मैं नवमीके प्रातःकाल जिनेश्वरी दीक्षा लेकर इस संसारके जालको तोड़ अविनाशी सुखके लिये इस पराधीन पर्यायसे छूटनेके उपायमें लग जाऊँगी। अर्थात् जिनदीक्षा ग्रहण कर लूंगी।

तब श्रीपालजीने कहा—"प्रिये! बार२ कहनेसे क्या? जो हमारा तुम्हारा परस्परका वचन है, उसे ही पालन करूंगा इसके लिये सिद्धचक्रकी साक्षी देता हूं।" ऐसा कहकर ज्यों ही श्रीपालजी चलने लगे, त्यों ही वह पुनः मोहवश स्वामीका पल्ला (चद्दरका खूँट) पकड़कर व्याकुल हो कहने लगी—"हे नाथ! मैं तो जानती थी कि आप अबतक केवल विनोद ही कररहे हैं, परंतु आप तो अब हँसीको सच्ची करने लगे। क्या सचमुच ही चले जावेंगे? भला, यह अबला किस प्रकार कालक्षेप करेगी? स्वामिन्! कृपा करो, दासीको अभय वचन दो, मै आपके दर्शनकी प्यासी हूँ। आपके विना मुझे यह सब सामग्री दुःखदाई है। यद्यपि मैनासुन्दरी सब जानती थी, परंतु पति-प्रेम ऐसा ही होता है।

जब श्रीपालजीने देखा कि त्रिया हठ पकड़ रही है, और

इससे कार्यमें विघ्न होनेकी संभावना है, तब ऊपरी मनसे कुछ क्रोध करके बोले—" स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा होता है कि वे हजार शिक्षा देनेपर भी अपनी चाल नहीं छोड़तीं, न कार्याकार्य ही देखती हैं। बस, छोड़ दे मुझे!" यह सुन नेत्र भरकर काँपते काँपते मैनासुंदरीने पल्ला छोड़ दिया, और नीची दृष्टि-कर स्वामीके चरणोंकी ओर देखने लगी। ठीक है, इसके सिवाय वह और कर ही क्या सकती थी? श्रीपालजीको उसकी ऐसी दीन दशा देखकर दया आगई। ठीक है दीनको देखकर किसे न दया होगी? पाषाणहृदय भी पिघल जायगा, जिसमें भी फिर अबलाओंका दीन होना तो पुरुषोंको और भी विह्वल बना देता है। यद्यपि श्रीपालको दया आगई थी; परंतु पुरुषार्थका दूत पिछे लग रहा था, इसलिये वे किसी प्रकार अपने विचारको फिरा नहीं सके। और अपने विचारपर दृढ़ बने रहकर दयार्द्र स्वरसे बोले—प्रिये! चिंता न करो। तुम यथार्थमें सती शीलवती साध्वी हो। तुम्हारा रुदन करना मेरे चित्तको व्याकुल कररहा है जो कि मेरी यात्रामें विघ्न करनेवाला है, इसीलिये मेरे मुँहसे ये कठोर शब्द निकल गये हैं। तुम ऐसा कभी अपने मनमें नहीं विचारना कि तुमसे मेरा प्रेम किसी प्रकार कम हो गया है। किन्तु जिस प्रकार तुम मेरे जानेसे दुःखित हो, मैं भी तुम्हें छोडनेमें उससे किसी प्रकार कम दुःखी नहीं हूँ।

" कहन सुननकी बात है; लिखी पढ़ी नहिं जात।
अपने जियसे जानियो; हमरे जियकी बात "।

परंतु इस समय मुझे एक बार जाना ही उचित है। तुम हठ न करो और हर्षित होकर मुझे जानेके लिये अनुमति दो। निदान मैनासुदरीने हाथ जोड़ नमस्कारकर पतिके चरणोंमें मस्तक रख दिया। इस प्रकार श्रीपाल स्त्रीको समझाकर डरते डरते माताके पास आज्ञा लेनेको गये। मनमें सोचने जाते थे कि क्या जाने माता आज्ञा देंगी या नहीं? यहाँसे तो किसी प्रकार निबटेरा हो गया है। इस प्रकार सोचने २ जाकर माताके चरणोंमें मस्तक झुका दिया, दोनों हाथोंकी अजुली जोडकर दीन हो खड़े होगये। माता पुत्रका विना समय आगमन देखकर चिंतावती होकर बोली,—" ए पुत्र! इस समय ऐसी आतुरतासे तेरे आनेका कारण क्या है? तब श्रीपालने अपने मनका सब वृत्तान्त कहकर विदेश जानेकी आज्ञा मॉगी। सुनते ही माता अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगी—ए पुत्र! एक तो पूर्व असाता कर्मोंने पहिले ही तुमसे वियोग कराया था सो जैसे तैसे बड़े कष्टसे बहुत दिनोंमें तुमसे मिलकर अपने हृदयकी दाह शांत की थी, परंतु क्या अब भी निर्दयी कर्म न देख सके, जो पुनः पुत्रसे विछोह कराने चाहते हैं। ए पुत्र! तुझे यह कैसी बुद्धि उत्पन्न हुई है? ए बेटा! अभी तो मै तुझे देखकर तेरे पिताके वियोगके दुःखको भूली हुई हूँ। सो तेरे विना मैं कैसे दिन व्यतित करूँगी?"

माताके ऐसे वचन सुनकर श्रीपाल बडी नम्रतासे बोले—" हे माता! मुझे इस समय जाना ही उचित है क्योंकि यहाँ रहनेसे यद्यपि कोई दुःख नहीं है, परंतु मै राजजँवाई कहकर

बुलाया जाता हूँ और मेरे पिताका, कुलका व देशका नाम कोई नहीं लेता है, इसीसे मेरा चित्त व्याकुल है। क्योंकि जिस पुत्रसे पितादि गुरुजनों कुल व देशका नाम न चले, वह पुत्र नहीं: किन्तु कुलका कलंक है। उनका जन्म ही होना न होनेके समान है, इसलिये माताजी! मुझे सहर्ष आज्ञा व आशीष दीजिये, जिससे मेरी यात्रा सफल हो। मैं शीघ्र ही बारह वर्षमें लौटकर सेवामें उपस्थित होऊँगा। आप श्रीजिनेंद्रका ध्यान कीजिये, और आपकी वधू (मैनासुंदरी) आपकी सेवामें रहेगी, तथा सातसौ आज्ञाकारी सुभट भी आपकी शरणमें उपस्थित रहेंगे।"

माता कुंदप्रभा पुत्रका अभिप्राय जान गई। उसे निश्चय हो गया कि अब पुत्र जानेसे न रुकेगा इसलिये हठकर रखना ठीक नहीं है और वह कोई बुरे अभिप्रायसे तो जा ही नहीं रहा है इत्यादि। तब अपने मनको दृढ़कर बोली–" प्रिय पुत्र! तुझे जानेकी आज्ञा देते हुए मेरा जी निकलता है; परंतु अब मैं तुझे रोक भी नहीं सकती हूँ। इसलिये जो तुम अब जाते ही हो तो जाओ और सहर्ष जाओ। श्रीजिनेंद्र देव, गुरु और धर्मके प्रभावसे तुम्हारी यात्रा सुफल होवे; परंतु हे पुत्र! विदेशका काम है, बहुत होशियारीसे रहना। परधन और परत्रियापर दृष्टि न डालना। सब जीवोंको आप समान जानना। अतिशय लोभ नहीं करना। झूठे व दम्भी (छली) लोगोंका साथ भी नहीं करना। किसीको भूलकर भी कुवचन नहीं कहना, शराबी मांसभक्षक लोगोंके निकट न रहना, न उनसे व्यवहार करना, जुआ (द्यूत) कभी नहीं खेलना, पापी, ठग, कोतवाल. कृपण. हठी. स्त्री.

हथियार, अन्ध पुरुष, नखी पशु, शृंगवाले पशु, वेश्या, रोगी, ऋणी, बंधुआ (कैदी), शत्रु, ज्वारी, चोर, असत्यभाषी, आदि किसीका **विश्वास** नहीं करना, क्योंकि इनकी प्रीति गुड़ लपेटी छुरीकी तरह घातक है। नक्खी, लक्खी, जटाधारी, मुंडे हुए, भस्मधारी, वनचर, कुब्जक, बौना (बामन), काना, केरा (कंज नेत्रवाला), छोटी गरदनवाला आदमी, डांकनी, शांकनी, दासी कुट्टनी (दूती) इनका भी विश्वास न करना। स्वस्त्री सिवाय अन्य स्त्रियां माता, बहिन, बेटीके समान जानना। अतिद्रव्य व ऐश्वर्य हो जानेपर भी अहंकार नहीं करना। निरंतर पंचपरमेष्टीका ध्यान हृदयमें रखना। भूलकर भी सिवाय जिनेंद्रदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामयी जिनवर कथित धर्मके अन्य कुदेव, कुधर्म व कुगुरुकी सेवा नहीं करना, और सिद्धचक्र व्रत मन वचन कायसे पालन करते रहना। ए पुत्र! ये मेरे वचन दृढ़कर पालना, भूलना नहीं," ऐसा कहकर माताने आशीर्वाद दिया।—

"श्री बढ़े अरु अतुल बल, बढ़े धर्मसे नेह।
चव रंग दलको संग ले, आवो सुत निज गेह॥
धन्य महूरत धन घडी, धन्य सुवासर सोय।
जा दिन तेरो वदन मैं, नैनन देखूं तोय॥

ऐसे शुभ वचन कहकर माताने श्रीपालके मस्तकपर दही दूध, और अक्षत डालती हुई, और मस्तकमें रोचन (कुमकुम) का तिलक करके श्रीफल दिया तथा निछरावल की। धायने भी आकर शुभ मूकी दी, सो श्रीपालने हर्षित होकर ली। फिर सर्व

स्वजनोंने सहर्ष आज्ञा दी, सो उसी रात्रिके पिछले पहरमें श्रीपालजीने सर्व उपस्थित जनोंको यथायोग्य प्रमाण जुहारु कहके **पंचपरमेष्टीका उच्चारण** करते हुए, हर्षित हो, उत्साह सहित प्रयान किया और सब स्वजन श्रीपालको विदाकर निज निज स्थानको पधारे ।

(१२) श्रीपालके द्वारा विद्याधरको विद्या सिद्ध होना और विद्याधरका श्रीपालको जल-तारिणी व शत्रु-निवारिणी विद्या देना ।

श्रीपालजी घरसे प्रस्थान कर अपने साथ चन्द्रहास खङ्ग और चरम आदि सम्पूर्ण आयुध साथ लिये हुए अति शीघ्रतासे अनेक वन, पर्वत, गुफा, सरोवर, खाई, नदी, पुर, पट्टनादिको उल्लंघन करते हुए पॉव प्यादे चलते चलते वत्सनगरमें आये । और उस नगरकी शोभा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । क्योंकि उस नगरमें नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित बडे २ उत्तग महेल यथाक्रमसे बने हुए थे । द्वारपर सुवर्ण कलश स्थापित थे । नगरमें चतुवर्णके नरनारी अपने अपने योग्य स्थानोंमें निवास करते थे । बाग बगीचोंसे नगर सुसज्जित हो रहा था । उसी नगरके निकट नन्दन वनके समान एक महारमणीक वन दिखाई पड़ा । सो श्रीपालजीने उसकी स्वाभाविक सुन्दरता देखनेकी इच्छासे उसमें

प्रवेश किया। उस स्थानकी शोभाको देखते हुए और मन्द सुगन्ध पवनसे चित्तको प्रसन्न करते हुए जब श्रीपालजी वहाँ फिर रहे थे, कि उन्होंने उसी (चंपक) वनमें एक वृक्षके नीचे किसी वीर पुरुषको वस्त्राभूषणसे अलंकृत, क्षीण शरीर और क्लेशयुक्त होकर मंत्र जपते हुए देखा। वे उसे देखकर सोचने लगे कि इतना क्लेश उठानेपर भी मालूम होता है कि इसे मंत्र सिद्ध नहीं हुआ है कदाचित् इसीसे उसका चित्त उदास हो गया होगा तब श्रीपालने उसके निकट जाकर पूछाः–

"हे मित्र! तुम कौनसे मंत्रका आराधन कर रहे हो, कि जिससे तुम्हारे चित्तकी एकाग्रता नहीं होती है ?" यह वचन सुनकर वह वीर चौंक उठा, और इनका रूप देखकर हर्षित हो बहुत आदरपूर्वक विनय सहित बोला–'हे पथिक! मुझे मेरे गुरुने विद्याका मंत्र दिया था, सो मैं उसीका जाप कर रहा हूं, परन्तु मेरा चचल चित्त स्थिर नहीं रहता है, और इससे मंत्र भी सिद्ध नहीं होता है, इसलिये यदि तुम इस विद्याका साधन करो, क्योंकि तुम सहनसील मालूम होते हो तो कदाचित् तुम्हें सिद्ध हो जाय तब श्रीपालजी बोले–भाई! आपका कहना ठीक है; परंतु सोना रत्नके साथ ही शोभा देता है, साधु क्षमासे शोभा देता है, जिनेन्द्रका स्तवन प्रातःकाल ध्यान पूर्वक ही शोभा देता है, राजा सैन्या सहित ही सोहता है, श्रावक दयासे ही सोहता है, बालक खेलते हुए सोहता है, स्त्री शील होनेसे शोभा देती है, पंडित शास्त्र पढ़ते हुए ही शोभा देते हैं, द्रव्य दानसे शोभा देती है, सरोवर कमलसे शोभता है, शूर युद्धमें शोभा देता है,

हाथी सैन्यामें शोभता है, वृक्ष ठंडी और सघन छायासे सोहता है, दूत कठिन वचनोंसे, कुल सुपुत्रसे, धीर परोपकारसे, शरीर निर्भयतासे और मंत्रसाधन स्थिरचित्तवालोंको ही शोभा देता है। इसलिये हे भाई ! मैं तो पथिक (रास्तागीर) हूँ, मुझे स्थिरता कहाँ ? और मंत्रसिद्धि कैसी ?"

यह सुनकर वह वीर बोला–" हे कुमार ! आप दयालु हो ! इसलिये मुझे अभय वचन दो। आप मेरे ही भाग्यसे यहाँ आ गये हो। इसलिये अब आप अविलम्ब स्वस्थचित्त होकर मंत्रका आराधन करो। आपको श्रीगुरुकी कृपासे यह विद्या सहज ही सिद्ध हो जायगी, ऐसा कहकर वह मंत्र और विधि जैसा उसके गुरुने बतलाया था उसने श्रीपालको बतला दी। तब श्रीपाल उसके वारवार कहने व आग्रह करनेसे मन वचन कायकी चचलताको छोडकर शुद्धतापूर्वक निश्चल आसन लगाकर मंत्र जपनेके लिये बैठ गये। सो एकाग्र चित्तसे बराबर एक दिनमें ही आराधना करनेसे उनको वह विद्या सिद्ध हो गई। तब सफलता हुई देखकर वह वीर उठा और श्रीपालको प्रणाम व स्तुति करके कहने लगा कि धन्य है आपके साहस व धीरताको, यह विद्या अब आप अपने ही पास रखिये, और मुझे कृपाकर आज्ञा दीजिये जिससे मैं अपने घर जाऊँ। तब श्रीपालजी बोले–भाई ! मुझे यह उचित नहीं है कि रस्ता चलते किसीकी वस्तु छीन लूँ। पराये पुत्रसे स्त्री पुत्रवती नहीं कहलाती है, पराये धनसे धन नहीं होता, त्यों ही पराई विद्या व बलसे बल होना नहीं समझना चाहिये, और फिर मैंने किया ही क्या है ? केवल

आपके कहनेसे अपनी शक्तिकी परीक्षा की है। सो आप अपनी विद्या लीजिये, ऐसा कह वह विद्या उस विद्याधर वीरको देकर आप अलग हो गये। तब विद्याधरने स्तुतिकर कहा—"भो स्वामिन्! यदि आप इसे नहीं स्वीकार करते तो ये **जल-तारिणी व शत्रु-निवारिणी** दो विद्याएँ अवश्य ही भेटस्वरूप स्वीकार कीजिये, और मुझपर अनुग्रहकर मेरे गृहको अपने पवित्र चरणकमलोंसे पवित्र कीजिये। ऐसा कह उक्त दोनों जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी विद्याएं देकर बडे आदर सहित वह श्रीपालजीको स्वस्थानपर ले गया, और कुछ दिन तक अपने यहाँ रख उनकी बहुत सेवा शुश्रूषा की। पश्चात् उनको इनकी इच्छानुसार विदाकर आप सानन्द आयु व्यतीत करने लगा। इस प्रकार श्रीपालजीने घरसे निकल वत्सनगरके विद्याधरको अपना सेवक बनाकर और उससे उक्त दो विद्याएँ भेटस्वरूप ग्रहणकर आगेको प्रस्थान किया। ठीक है:—

'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'।

अर्थात्—गुणका आदर ठौर सब, राजाका निज देश"तात्पर्य—प्रत्येक पुरुषको गुणवान् होनेका प्रयत्न करना चाहिये, न कि द्रव्यवान् होनेका; क्योंकि गुणवानके आश्रय ही द्रव्य रहता है; इसलिये गुणवान् ही श्रेयस्कर है।

—⊱⊰—

(१३) धवलसेठका वर्णन।

श्रीपालजी विद्याधरसे जल-तारिणी और शत्रु-निवारिणी दो विद्याएँ ग्रहणकर वत्सनगरसे निकलकर अनेक वन उपवनोंकी शोभा देखते हुए **भृगुकच्छपुर** [भरुच] आये और नगरकी शोभा देखकर चित्तमें प्रसन्न हुए। यह नगर समुद्रके किनारे होनेसे अतिशय रमणीक भासता था। श्रीपाल घूमते २ उस नगरके किसी उपवनमें जा पहुँचे और वहाँ पास ही एक टेकड़ीपर श्रीजिनभवन देखकर अति-आनंदित हुए और प्रभुकी भक्ति वंदनाकर अपना जन्म धन्य माना। इस प्रकार वे सिद्धचक्रका आराधन करते हुए कुछ कालतक उस नगरमें रहे। एक दिन **कोशांबी** नगरीका एक धनिक व्यापारी (धवलश्रेष्ठि) व्यापारके निमित्त देशांतरको जानेके लिये **पांचसौ जहाज** भरकर इसी नगरके समीप आया। पवनके योगसे उसके जहाज पासकी एक खाडीमें जा पडे। उस सेठके साथ जितने आदमी थे, उन सबने मिलकर अपनी शक्तिभर उपाय किया, परंतु वे जहाज न चला सके। तब सेठको बड़ी चिंता हुई, उसका शरीर शिथिल हो गया। निदान वह उदास होकर सोचते २ जब कुछ उपाय न बन पड़ा तब लाचार हो नगरमें आकर किसी नगरनिवासी निमित्तज्ञानीसे अपना सब वृत्तांत कहकर जहाजके अटक जानेका कारण पूछा। तब उस नगरनिवासीने कहा—हे सेठ! आपके अशुभ कर्मके उदयसे ये जहाज अटक गये हैं। इनको जलदेवोंने कील दिये

हैं, सो या तो कोई महागुणवान्, लक्षणवंत, गंभीर पुरुष, जो निर्भय हो, वह आकर इन जहाजोंको चलावेगा तो चलेंगे अथवा यहाँपर एक ऐसे ही महापुरुषका वलिदान करना होगा। यह सुनकर सेठ अपने डेरेमें आया, और मंत्रियोंसे मंत्र करके इस नगरके राजाके समीप गया। बहुमूल्य भेट देकर राजाको प्रसन्न किया और मौका पाकर अपना सम्पूर्ण वृत्तांत कह राजासे एक आदमीके बलि देनेकी आज्ञा प्राप्त कर ली, तुरन्त ही ऐसा मनुष्य जो अकेला गुणवान् और निर्भय हो, उसे ढूंढनेके लिये चारों ओर आदमी भेजे। सो नौकर फिरते २ उसी बगीचेमें, जहा कि श्रीपालजी एक वृक्षके नीचे शीतल छायामें सो रहे थे पहुंचे। उनको देखकर वे विचारने लगे कि हमें जैसा पुरुष चाहिये था, यह ठीक वैसा ही मिल गया है। बस, अपना काम बन गया; परन्तु उन्हें जगानेकी हिम्मत नहीं पडती थी। सब लोग परस्पर एक दूसरेको जगानेके लिये प्रेरणा कर रहे थे, कि इतनेमें श्रीपालजीकी नींद अपनेआप ही खुल गई। तो आखें खुलते ही अपने आपको चारों ओरसे मनुष्योंसे घिरा हुआ देखा, तब निःशक होकर बोले:—"तुम कौन हो! और मेरे पास किस लिये आये हो? यह सुनकर वे नौकर बोले:—"हे स्वामिन! कौशांबी नगरीका एक धनिक व्यापारी, जिसका नाम धवलसेठ है, व्यापार निमित्त पांचसौ जहाज लेकर विदेशको जा रहा था, यहॉ किसी कारणसे उसके जहाज खाड़ीमें अटक गये है सो उसने मंत्रियोंसे मंत्र करके विवेक रहित हो, जहाज चलानेके लिये एक आदमीकी बलि देना निश्चयकर हमको मनुष्यकी तलाशमें

भेजा है। अभीतक मनुष्य हमको कोई मिला नहीं है, और सेठका डर भी बहुत लगता है, कि खली जायँगे तो वह मार डालेगा, और नहीं जावेंगे तो ढूँढकर अधिक कष्ट देवेगा, इसलिये अब आपका शरण है, किसी तरह बचाइये। यह सुनकर श्रीपाल बोले—"भाइयो! तुम भय मत करो। तुम कहो तो क्षणभरमें करोड़ों वीरोंका मर्दन कर डालूँ और कहो तो वहाँ चलकर सेठका काम कादूँ। तब वे आदमी स्तुति करके गद्गद वचन हो बोले—"स्वामिन्! यदि आप वहां पधारेंगे तो अतीव कृपी होगी, और लोगोंके प्राण भी बचेंगे। आपका यश बहुत फैलेगा। आप ...रवीर हो, आपके प्रसादसे सब काम हो जायगा। यह सुनकर श्रीपालजी तुरंत ही यह विचारकर कि देखें कर्मका क्या बनाव है? क्या२ कौतुक होता है? चलकर मैं भी अपने बलकी परीक्षा करूँ, उन वनचरोंके साथ चलकर शीघ्र ही धवलसेठके पास पहुँचे।

वनचर सेठसे हाथ जोड़कर बोले:—"हे सेठ! आप जैसा पुरुष चाहते थे, सो यह ठीक वैसा ही लक्षणवन्त है। अब आपका कार्य नि.सदेह हो जायगा? यह सुनकर उस लोभ-अंध सेठने विना ही कुछ सोचे और विना ही पूछे कि तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? श्रीपालको बुलाकर उबटन कराकर स्नान करवाया, इतर फुलेल चन्दनादि लगाकर उत्तम २ वस्त्राभूषण पहिराये, और बड़े गाजे बाजे सहित उस स्थानपर जहाँ जहाज अटक रहे थे ले गये। जब वहाँ शूरवीरोंने इनके मस्तकपर चलानेके लिये खड्ग उठाया, तब श्रीपालजी हर्षित हो मनमें यह विचारते हुए कि अब इन सबका काल निकट आया है बोले—

" अरे सेठ ! तुझे यहाँ वध करनेसे मतलब है या कि अपने जहाजोंको चलानेसे ? सेठने उत्तर दिया-हमको जहाज चलाना है। यदि तू चला देवेगा तो तुझे फिर कोई कष्ट देनेवाला नहीं है। तब श्रीपालजी बोले—" अरे मूर्ख ! तूने मुझको देखकर कुछ भी शंका नहीं की, और वलि देनेको तत्पर हो गया। ठीक है-"अर्थी दोषो न पश्यति" कहा भी है:-

" लोभ बुरा संसारमें, सुध बुध सब हर लेय।
लोभ पापको बाप है, शुभ्र पयानो देय॥"

क्या तू यह जानता है कि मै यहाँ तेरे उद्यमके अनुसार बलि हो जाऊँगा ? देखूँ तो तेरे पास कितने शूरवीर हैं ? उन सबको एक ही वारमें चूर चूर कर डालूँ। देखूँ, कौन साहसकर मेरे साम्हने बलि देनेको आता है ? आओ ! शीघ्र ही आओ ! देर मत करो ! और फिर मेरे पराक्रमको देखो ! अरे दुष्टो ! तुमको कुछ भी लज्जा भय व विचार नहीं, केवल लोभके वश अनर्थ करनेपर कमर बाध ली है, सो आओ मैं देखता हूँ कि तुमने अपनी२ मातावोंका कितना २ दूध पिया है ? श्रीपालजीके ऐसे साहसयुक्त निर्भय वचन सुनकर धवलशेठ और उसके सब आदमी मारे भयके काँपने लगे, और नम्रतासे विनय सहित बोले—

"स्वामिन् ! हम लोग अविवेकी हैं। आपका पुरुषार्थ विना जाने ही यह खोटा साहस हमने किया था। आप दयालु, कोटीभट्ट, साहसी, न्यायी और महान् गुणवान् हैं। तुम्हारी बड़ाई कहाँतक करें। क्षमा करो, प्रसन्न होओ और हम लोगोंका संकट-

दूर करो। इसपर श्रीपालजीको दया आगई, तब उन्होंने आज्ञा दी—" अच्छा, तुम लोग अपने जहाजोंको शीघ्र ही तैयार करो।" तुरंत ही सब जहाज तैयार किये गये! जहाजोंको तैयार देखकर श्रीपालजीने पचपरमेष्टीका जाप और पश्चात् सिद्धचक्रका आराधन किया। ज्यों ही उनको ढकेला कि वे सब जहाज चलने लगे। सब ओर जयजयकार शब्द होने लगा, खुशी मनाई जाने लगी, बाजे बजने लगे। सब लोग श्रीपालजीके साहस, रूप, बल व पुरुषार्थकी प्रशंसा करने लगे, और सबने उनको अपने साथ ले जानेका विचारकर विनय की कि यदि आप हम लोगोंपर अनुग्रहकर साथ चलें, तो हमारी यह यात्रा सुफल हो। तब श्रीपालजीने कहा—"सेठजी यदि आप अपनी कमाईका दशवाँ भाग मुझे देना स्वीकार करें तो निःसंशय मैं आपके साथ चलूँ" सेठने यह बात स्वीकार की और श्रीपालजीने धवलसेठके साथ प्रस्थान किया।

(१४) धवलसेठको चोरोंसे छुड़ाना।

समुद्रमें जब कि धवलसेठके जहाज चले जा रहे थे और सब लोग अपने २ रागमें लवलीन थे अर्थात् कोई श्रीजीकी आराधना करते थे, कोई नाचरंगमें रंजित थे, कोई समुद्रको देखकर उसकी लहरोंसे भयभीत हो कायर हो रहेथे, उसी समय मालिया (जहाजके सिरेपर बैठकर दूरतक देखनेवाला) एकदम चिल्ला उठा—शूरवीरो! होशयार हो जाओ। अब असावधानीका समय नहीं है। देखो, सामनेसे एक बड़ा भारी डाँकुओंका दल

आरहा है। उनमें बड़े २ वीर लोग दृष्टिगोचर होते हैं, जो कि हथियारबन्द हैं। उसके ऐसा कहते २ ही जहाजमें एकदम खलबली मच गई। सामन्त लोग हथियार लेकर सामने आ गये और कायर भयभीत होकर यहां वहाँ छुपने लगे। देखने ही देखते लुटेरोंका दल निकट आ गया और उन्होंने आकर सेठके शूरोंको ललकारा—अरे मुसाफिरो! ठहरो, कहाँ जाते हो? अब तुम्हारा निकल जाना सहज नहीं है। या तो हमारा साथ स्वीकार करो, या अपनी सब सम्पत्ति हमें सौंपकर अपना मार्ग लो, अन्यथा तुम्हारा यहाँसे जाना नहीं हो सकता। यदि तुममें कोई साहसी है तो सामने आजावे। फिर देखो, कैसा चमत्कार दृष्टि पड़ता है। सेठके शूरवीर उन डाकुओंकी ललकार सह न सके, तुरत ही टीडी दलके समान टूट पडे, और दोनोंमें घमसान युद्ध हुआ। बहुतसे डाकू मारे गये, और कई पकडे गये, जिससे वे लोग भाग पडे और सेठके दलमें आनन्द ध्वनि होने लगी, परन्तु इतनेहीसे इस आपत्तिका अन्त नहीं हुआ। वे डाकू लोग कुछ दूरतक जाकर पुनः इकट्ठे हुए और स्वस्थचित्त हो परस्पर सलाह कर यह निश्चय किया कि एक वार फिर धावा मारना चाहिये। बस, उन लोगोंने पुनः आकर रंगमें भंग डाल दी और भूखे सिंहकी तरह सेठके ऊपर टूट पडे। इस समय डाकुओंकी बाजी रह गई और वे लोग बातकी बातमें धवलसेठको जीता ही बाँधकर ले चले। यह देख सेठकी सारी सैनामें कोलाहल मचगया। यहाँ तक तो श्रीपालजी चुपचाप बैठे हुए यह सब कौतुक देखते रहे। सो ठीक है, क्योंकि धीरवीर पुरुष छोटी २ बातोंपर ध्यान

नहीं देते हैं, क्षुद्र पुरुषोंपर उनका क्रोध नहीं होता है, चाहे कोई इस तरहका कितना ही उपद्रव क्यों न करे। जैसे हाथीके ऊपर बहुतसी मक्खियां भनभनाया करती हैं परन्तु उसे कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकती हैं, ऐसा समझकर हाथी उनकी कुछ परवाह नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि मेरे केवल कानके हिला देनेहीसे ये सब दिशा विदिशाओंकी शरण लेने लगेंगी—भाग जावेंगी। वैसे ही धीरवीरोंको अपने बलका भरोसा रहता है। कहा भी है—

"गीदड आये गोद, सिंह नहिं हाथ पसारे।
महामत्त गजराज, देखकर कुंभ विदारे॥
तैसे ही सामन्त, लरे नहिं कायर जनसे।
देख बली परचंड, भगे नहिं कबहूं रणसे॥
प्रबल शत्रु मद परिहरें, तो लघुकी क्या बात।
कै जूझें रणके विषे, कै बन कर्म खिपात॥"

निदान सेठको बाँधकर ले जाते हुए देखकर श्रीपालसे रहा न गया तब वे तुरत उठ खड़े हुए। सो इन्हें उठा देख सेठके आदमी रुदन करते हुए आये और करुणाजनक स्वरसे बोले—' स्वामिन्! बचाओ. देखो सेठको डाकू बाँधे लिये जा रहे हैं। श्रीपाल उनकी दीनवाणी सुनकर और उन डाकुओंकी निष्ठुरताको देखकर बोले—" अरे वीरो! " धैर्य रक्खो! चिंता न करो! मैं देखता हूं चोरोंमें कितना बल है! अभी बातकी बातमें सेठको छुड़ा कर लाता हूँ। श्रीपालजीके वचनोंसे सबको संतोष हुआ। और श्रीपालजीने तुरंत ही शस्त्र धारणकर चोरोंको सामने जाकर ललकारा:—

अरे नीचो ! क्या तुम मेरे सामने सेठको ले जा सकते हो ? कायरो ! खड़े रहो, और सेठको छोड़कर अपनी क्षमा कराओ, नहीं तो अब तुम्हारा अंत ही आया जानो ! श्रीपालकी यह सिंह-गर्जना सुनकर डॉकू लोग मृगदलके समान तितरवितर हो गये और किसी प्रकार अपना बचाव न देखकर थर २ कॉपने लगे। निदान यह सोचकर कि यदि मरना होगा तो इन्हींके हाथसे मरेंगे। अब तो इनका शरण लेना ही श्रेष्ठ है। यदि इन्हें दया आगई तो बच भी जावेंगे, और जो भागेंगे तो ये एक एकको पकड पकड़कर समुद्रमें डुबाकर नामनिःशेष कर देंगे। यह सोचकर डॉकू लोग श्रीपालके शरणमें आये, और सेठका बन्धन छोडकर नतमस्तक होकर बोले-

" स्वामिन् ! हम लोग अब आपको शरण हैं, जो चाहें सो कीजिये !" तब श्रीपालने धवलसेठसे पूछा-"हे तात ! इन लोगोंके लिये क्या आज्ञा है ?" धवलसेठ तो क्रूरचित्त अविचारी था, बोला- इन सबको वहुत कष्ट देकर मारना चाहिये। श्रीपालजी ऐसे कठोर वचन सुनकर बोले-" तात ! उत्तम पुरुषोंका कोप क्षणमात्रका होता है और शरणमें आयेहुएको भी जो मारता है वह महानिर्दयी अधोगतिका अधिकारी होता है। दया मनुष्योंका प्रधान भूषण है। दयाके विना मनुष्य और सिंहादि क्रूर जीवोंमें क्या अंतर है ? दयाके विना जप तप शील संयम योग आचरण सब झूठे हैं, केवल कायक्लेशमात्र हैं। इसलिये दया कभी नहीं छोड़ना चाहिये। और फिर जब हम सरीखे पुरुष आपके साथ हैं तो आपको चिंता ही किस बातकी है ?" तब लज्जित होकर

सेठने कहा–हे कुमार ! आपकी इच्छा हो सो करो । मुझे उसीसे संतोष है । " तब श्रीपालजी उन चोरोंको लेकर अपने जहाजपर आये और उन सबके बंधन छोडकर बोले–"वीरो ! मुझे क्षमा करो । मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। आप यदि हमारे स्वामीको पकड़कर न ले जाते तो यह समय न आता, इत्यादि सबसे क्षमा कराकर सबको स्नान कराता, और वस्त्राभूषण पहिराकर सबको पंचामृतका भोजन कराया। तथा पान इलायची इत्र फुलेलादि द्रव्योंसे भले प्रकार सन्मानित किया । वे डाँकू श्रीपालजीके इस वर्तावसे बड़े प्रसन्न हुए, सहस्रमुखसे स्तुति करने लगे और अपना मस्तक श्रीपालके चरणोंमें धरकर बोले–" हे नाथ ! हमपर कृपा करो ! धन्य हो आप ! आपका नाम चिरस्मरणीय है । इस तरह परस्पर मिलकर वे डाँकू श्रीपालसे विदा होकर अपने घर गये और श्रीपाल तथा धवलसेठ आनन्दसे मिलकर समय व्यतीत करने लगे और अपनी आगामी यात्राका विचारकर पयाण करनेको उद्यमी हुए ।

---

(१५) डाँकुओंकी भेंट ।

वे डाँकू लोग श्रीपालसे विदा होकर अपने स्थानपर गये और श्रीपालके साहस व पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे कि धन्य है उस वीरका बल, कि जिसने विना हथियारके इतने डाँकू बाँध लिये और फिर सबको छोडकर उनके साथ बड़ा भारी सत्कार किया । इसलिये इसको इसके बदले अवश्य ही कुछ भेंट करना चाहिये, क्योंकि हम लोगोंने बहुतसे डाँके मारे, और अनेक

पुरुष देखे हैं, परंतु ऐसा महान पुरुष आजतक कहीं नहीं देखा है। इसने पूर्वजन्मोंमें अवश्य ही महान् तप किया है, या सुपात्र दान दिया है, इसीका यह फल है। ऐसा विचारकर वे लोग बहुतसा द्रव्य सात जहाजोंमें भरकर श्रीपालके निकट आये और विनय सहित भेंट करके विदा हो गये। ठीक है, पुण्यसे क्या नहीं हो सकता है ? कहा है—

" वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्त विषमस्तनं वा, रक्ष्यंति पुण्यानि पुरा कृतानि ॥"

अर्थात् वनमें, रणमें, शत्रुके सन्मुख, जलमें, अग्निमें, महासागरमें, पर्वतकी शिखापर, सोते हुए, प्रमाद अवस्थामें, अथवा विषसे मूर्छित अवस्थामें पूर्व पुण्य ही सहायता करता है। तात्पर्य यह है कि जीवोंको सदैव अपने भाव उज्वल रखना चाहिये, सदा सबका भला और परोपकार करना चाहिये। क्योंकि पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र और पापोदयसे मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

(१६) रयनमंजूषाकी प्राप्ति।

इस तरह श्रीपालजी उन डॉकुओंसे रत्नोंके सात जहाज भेंट लेकर और उनको अपने आज्ञाकारी बनाकर धवलसेठके साथ २ रातदिन प्रयाण करते हुवे बड़े आनन्द और कुशलतासे हंसद्वीपमें पहुँचे। यह द्वीप वन उपवनोंसे सुशोभित था। इसमें बड़ी २ अठारह और छोटी २ रत्नोंकी अनेक खानें थीं। गजमोती बहुतायतसे मिलते थे। सोने चाँदीकी भी बहुतसी खानें थीं।

चंदनके वनोंसे मंद सुगन्ध पवन चित्तको चुरा लेती थी। केशरके वन अतिशोभा दे रहे थे। कस्तुरीकी सुगंध भी मगजको तहस नहस किये देती थी। तात्पर्य यह द्वीप अत्यन्त शोभायमान था। ऐसी वस्तु कदाचित् ही कोई होगी, जो वहाँ पैदा न होती हो। वहाँपर रहनेवाले मनुष्य प्राय सभी धन कण कंचनसे भरेपूरे थे। दुःखी दरिद्री दृष्टिगोचर नहीं होते थे। नगरमें बडे २ ऊँचे महल बनरहे थे।

इस द्वीपका राजा कनककेतु और रानी कंचनमाला थी। ये दम्पति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और न्यायपूर्वक प्रजाको पालते थे। राजाके दो पुत्र और रयनमंजूषा नामकी एक कन्या थी। सो जब वह कन्या यौवनवती हुई, तब राजाको चिंता हुई कि इस कन्याका वर कौन होगा? यह पूछनेके लिये राजा अपने दोनों पुत्रोंको लेकर उद्यानकी ओर मुनिराजकी तलासमें गया, तो एक जगह वनमें अचल मेरुवत् ध्यानारूढ परम दिगंबर मुनिको देखा। तीनों वहां जाकर भक्ति सहित नमस्कारकर तीन प्रदक्षिणादेकर बैठ गये। और जब मुनिराजका ध्यान खुला; तब वे विनयसहित पूछने लगे—'हे प्रभो! आप जगतसे पूज्य, करुणासागर, कुमति-विनाशक, ज्ञानसूर्य, शिवमगदर्शक, और समस्त दुःखहरण करने-वाले हो। हम अल्पबुद्धि कहाँतक आपकी स्तुति करें? निरा-श्रितको आश्रय देनेवाले सच्चे हितू आप ही हैं। हे दीन दयालु प्रभो! मेरे मनमें एक चिंता उत्पन्न हुई है। वह यह है कि मेरी पुत्री रयनमंजूषाका बर कौन होगा? सो कृपाकर बताइये, जिससे मेरी चिंता मिटे, और संशय दूर हो।

तब वे परम दयालु समस्त शास्त्रोंके पारंगत प्राप्त हुए मुनिराज बोले–" राजन् ! सहस्रकूट चैत्यालयके वज्रमयी कपाट जो महापुरुष उघाड़ेगा, वही इस पुत्रीको वरेगा।" तब राजा प्रसन्न हो नमस्कारकर अपने घर आया, और उसी समय नौकरोंको आज्ञा दी कि तुम लोग सहस्रकूट चैत्यालयके द्वारपर पहरा दो, और जो पुरुष आकर वहाँके किवाड़ उघाड़े, उस पुरुषका भले प्रकार सन्मान करो और उसी समय आकर हमको खबर दो। राजाकी आज्ञा पाकर नौकरोंने उसी समयसे वहाँ पहरा देना आरंभ कर दिया।

धवलसेठने यहाँकी शोभा और व्यापारका उत्तम स्थान देखकर जहाजोंके लंगर डाल दिये, और नगरके निकट डेरा किया तथा धवलसेठ आदि कुछ आदमी बाजारका हालचाल देखनेको नगरमें गये। श्रीपालजी भी गुरुवचनको स्मरण करके कि जहाँ जिनमंदिर हो वहाँपर प्रथम ही जिनदर्शन करना, नित्य षट् आवश्यक क्रियाओंकी यथाशक्ति पूर्णता करना, जिनमंदिरकी खोजमें गये। सो अनेक प्रकार नगरकी शोभा देखते और मनको आनन्दित करते हुए वे एक अति ही रमणीक स्थानमें आये। वहाँ अतिविशाल उत्तंग सुवर्णका बना हुआ एक सुन्दर मंदिर देखा। देखते ही आनन्दित हो मंदिरके द्वारपर पहुँचे तो देखा कि दरवाजा वज्रमयी किवाडोंसे बंद है। तब विस्मित हो पहरेवालोंसे पूछा कि दरवाजा क्यों बंद है? तब वे पहरेदार विनयसहित कहने लगे–' महाराज! यह जिनमंदिर है। वज्रके कपाटोंसे बंद कराया गया है। इसमें और कुछ विकार नहीं है, परीक्षा निमित्त

ही बंद किये गये हैं सो आज तक तो ये किवाड़ किसीसे नहीं उघाड़े गये हैं। अनेकों योद्धा आये और अपना अपना बल लगाकर थक गये परन्तु किवाड़ न उघड़े।"

श्रीपालजी द्वारपालोंके वचन सुनकर चुप हो रहे और मनमें हर्षित होकर सिद्धचक्रका आराधनकर ज्यों ही किवाड हाथसे दबाये त्यों ही वे खटसे खुल गये। तब श्रीपालजीने हर्षित होकर "जय निःसहि, जय निःसहि, जय निःसहि, जय जय जय" इत्यादि शब्दोंका उच्चारण करते हुए भीतर प्रवेश किया और श्रीजिनके सन्मुख खड़े होकर नीचे लिखे अनुसार स्तुति करने लगेः—

जिन प्रतिबिंब लखी मैं सार, मन वांछित सुख लहो अपार।
जय जय निःकलंक जिनदेव, जय जय स्वामी अलख अभेव॥
जय जय मिथ्या तम हर सूर, जय जय शिव तरुवर अंकूर।
जय जय मयमथन घनमेह, जय जय कंचनसम द्युति देह॥
जय जय कर्म विनाशन हार, जय जय भवदधि सागर पार।
जय कंदर्प गज दलन मृगेश, जय चारित्र धुराधर शेष॥
जय जय क्रोध सर्प हत मोर, जय अज्ञान रात्रिहर भोर।
जय जय निराभरण शुभ संत, जय जय मुक्ति कामिनी—कंत॥
बिन आयुध कुछ शठ न रहे, राग द्वेष तुमको नहिं चहे।
निराभरण तुम हो जिन चन्द्र, भव्य कुमुद विकसावन कंद॥
आज धन्य वासर तिथि वार, आज धन्य मेरो अवतार।
आज धन्य लोचन मम सार, तुम स्वामी देखे जु निहार।
मस्तक धन्य आज मो भयो, तुम्हरे चरण कमलको नयो।
धन्य पाँव मेरे भये अंब, तुम तट आय पहूँचो जबै॥
आज धन्य मेरे कर भये, स्वामी तुम पद पर्शन लये।
आज ही मुख पवित्र मुझ भयो, रसना धन्य नाम जिन लयो॥

आज ही मेरो सब दुख गयो, आज ही मो कलंक क्षय भयो।
मेरे पाप गये सब आज, आज ही सुधरो मेरो काज ॥
अतिमुदित भयो मेरो हियो, पणविद नमस्कार जय कियो।
धन्य आप देवनके देव, श्रीपालको निजपद देव ॥

इस प्रकार स्तुति करके फिर सामायिक, वंदन, आलोचन, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्गादि षट् आवश्यककर स्वाध्याय करने लगे। और वे द्वारपाल जो पहरेपर थे, ऐसे विचित्र शक्तिधर पुरुषको देखकर आश्चर्यवन्त हो, कितनेक तो वहाँ ही रहे और कितनेक राजाके पास गये। और सम्पूर्ण वृत्तात राजासे कह सुनाया कि एक बहुरूपवान्, गुणनिधान, सम्पूर्ण लक्षणोंका धारी पुरुष जिनालयके द्वारपर आया, और द्वार बन्द होनेका कारण पूँछकर "ॐ नमः सिद्धम्" इस प्रकार उच्चारणकर निज करकमलोंसे सहज ही किवाड़ खोल दिये। इसलिये हम आपकी आज्ञानुसार आपको यह शुभ समाचार कहने आये हैं।

राजा यह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और समाचार देनेवालोंको बहुत कुछ पारितोषिक दिया। पश्चात् बड़े उत्साहसे गाजेबाजे सहित सहस्रकूट चैत्यालय पहुँचा। प्रथम ही श्रीजिनको नमस्कार स्तुति करने लगा—

ॐ नमो तुम जिनवर देव, भव भव मिले तुम्हारी सेव।
तुम जिन सर्व दुःख परिहर्न, श्रीलक्षत तुम भविजन शर्न ॥
तुम बिन जीव फिरे संसार, जानी संकट सहे अपार।
तुम विन करम न छोडे संग, तुम विन उपजे मन भ्रम भग ॥
तुम विन भव आतापहिं सहे, तुम विन जन्म जरा मृत्यु दहे।
तुम विन कोऊ न लेय उबार, तुम विन कर्म मिटे न लगार ॥

तुम बिन दुखिय दुःख को हरे, तुम बिन कौन परम सुख करे।
तुम बिन को काटे यमफंद, तुम बिन को पुजवे आनन्द ॥
तुम बिन उपजे कुमति कुभाव, तुम बिन कोई न और सहाव।
तुम बिन हितू न दूजा कोय, तुम बिन शुभ गति कबहु न होय ॥
तुम बिन मैं पापी जग भ्रम्यो, तुम बिन कालवाद सब गयो।
तुम बिन मैं दुःख पायो घणो, वेद श्रुत कहाँ लग भणो ॥
तुम अवतक जिन लख्यो न कोय, दीनी आयु व्यर्थ सब खोय।
तातें अजे कहूं सुनि लेय, कर्म अनादि काट मम देय।
कनककेतुकी ओर निहार, जन्म मरण दुख कीजे क्षार ॥

राजा इस प्रकार प्रभुकी वंदना करके पश्चात् श्रीपालके निकट आया और यथायोग्य जुहार आदिके पश्चात् कुशल क्षेम और आगमनका कारण पूछने लगा:—

हे कुमार ! आपका देश कौन है ? किस कारण यहाँ आगमन हुआ है? इत्यादिक प्रश्न जब राजाने किये तब श्रीपालजी मनमें विचार करने लगे कि यदि मैं अपने मुँहसे अपना वृत्तांत कहूँगा, तो राजाको खातिरी (निश्चय) होना कठिन है, क्योंकि इस समय अपने कथनकी साक्षी करनेवाला कोई नहीं है, सो बिना साक्षी सच भी झूठ हो जाता है। इसलिये राजाको किस प्रकार उत्तर दूँ ताकि इनको विश्वास हो। पुरुषको चाहिये कि जो कुछ भी कहे; पहिले साक्षी ढूँढ ले अथवा चुप रहे इत्यादि सोच ही रहे थे कि पूर्व पुण्यके योगसे दो मुनिराज विहार करते हुए कहींसे वहाँ आ गये। सो ये दोनों उन मुनिको देखकर परम आनन्दित हो उठ खडे हुए, और बड़ी विनयसे स्तुति करने लगे—

अहा धन्य भाग्य हम सार, भयो दिगम्बर गुरु निहार।
धनि तुम धर्म धुरंधर धीर, सहत बीसहो परिषह धीर ॥

धन्य मोहमत हरन दिनन्द, भव्य कुमुद विकसावन चन्द ।
कर्म बली जगमें परधान, ताह हतनको आप कृपाण ॥
सुर हू सकहि न तुम गुण गाय, तो हमसे किम वरणे जाँय ।
हे ! प्रभु हमपर होहु दयाल, धमबोध दीजे कृपाल ॥

इस प्रकार गुरुकी स्तुति करके वे दोनों निज २ स्थानपर बैठे। श्री गुरुने उनको 'धर्मवृद्धि' देकर इस तरह उपदेश दिया--

" ए जिज्ञासुओ ! सर्व धर्म और सुखका मूल सम्यक्त्व है। इसके बिना कुल क्रिया कर्म जप तप संयम निर्मूल है, इसलिये सबसे पहिले जीवोंको यह सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिये। वह सम्यक्त्व दो प्रकार है-एक निश्चय और दूसरा व्यवहार। निज स्वरूपानुभव स्वरूप निश्चय सम्यक्त्व है, और तत्त्वनिश्चय सम्यक्त्वके लिये साधनरूप प्रधान कारण है। इस व्यवहार सम्यक्त्वके लिये साधनभूत देव गुरु और शास्त्र है। कारणसे कार्य होता है, इसलिये कारणकी उत्तमतापर ही कार्यकी उत्तमता लगाना चाहिये, अर्थात् सर्व दोषोंसे रहित (वीतराग) लोकालोकका ज्ञाता (सर्वज्ञ) और सर्वजीवोंका हित करनेवाला (हितोपदेशी) ऐसा तो देव अर्हंत व सिद्ध है। ऐसे ही देवके द्वारा कहा हुआ धर्म (द्वादशांगरूप शास्त्र) तथा परम जितेन्द्रिय अट्ठाईस मूलगुण और ८२००० उत्तर गुणोंके धारी आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु इन तीनोंका भी सम्यक् श्रद्धान करना चाहिये। स्वप्नमें भी इनके सिवाय अन्य भेषी कुलिंगी देव गुरु व जैनाभास श्वेतांबर ढूंढक आदि मत तथा जैनेतर मत स्वरूप धर्मको कदापि अंगीकार नहीं करना चाहिये। पर

परमेष्ठी अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु भव्य जीवोंको भव सागरमें पार करनेवाले हैं इसलिये हे वत्स! तुम मन वचन कायसे इनका आराधन करो, जिससे उभय लोकमें सुख पाओ। ऐसा जानकर सम्यक् दर्शन पूर्वक सप्त व्यसनोंका त्याग करो तथा पंच अणुव्रत और सप्त शीलका पालन करो।

हे वत्स हो! इन सब व्रतोंको धारण करनेका मुख्य तात्पर्य विषय और कषायोंको कम करना है सो जो भव्य जीव इन मूल बातोंपर दृष्टि रखकर व्रताचरण करते हैं, उन्हींका व्रत करना सफल है क्योंकि जो जडको काटकर वृक्ष व फलोंकी रक्षा करना चाहता है वह मूर्ख है। मूलो नास्ति कुतः शाखा। यथार्थमें मोहसे उत्पन्न ये राग द्वेषादि कषाय ही आत्माके परम शत्रु हैं, इन्हींके निमित्तसे कर्मोंका आश्रव और बंध होता है। जैसे जीव कर्म करता है वैसी ही शुभाशुभरूप पुद्गल कर्मवर्गणाएँ आत्माकी ओर आती हैं और तीव्र व मंद कषाय भावोंके अनुसार तीव्र व मंदरूप अनुभागको लिये हुवे कर्मोंका बंध होता है। इसी प्रकार यह जीव अनादि कालसे कर्म बंध करता हुआ संसारमें जन्ममरणादि अनेक दुःखोंको भोगता है। यह पुद्गलकर्मोंके वश शुद्ध आत्माके स्वरूपको भूला हुआ चतुर्गतिमें ८४०००० योनिरूप स्वांग धरकर दुःखोंमें ही सुख मान रहा है, इसलिये धर्मके स्वरूपको जानकर श्रद्धापूर्वक जो पुरुष विषय और कषायोंके दमन करनेवाले दो प्रकार (सागार और अनागार) धर्मको धारण करते हैं वे स्वर्गादिके सुखोंको भोग सच्चे (मोक्षके) सुखको प्राप्त होते हैं।

परन्तु जो लोग विना धर्मका स्वरूप समझ केवल चारित्रमें ही रंजित हो जाते हैं वे संसारहीके पात्र बने रहते हैं। उनकी यह सब क्रिया कायक्लेशमात्र ही है, इसलिये जिनदेवने प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्रको सम्यक् चारित्र कहा है। इसलिये यथाशक्ति चारित्र भी धारण करना चाहिये।

गुरुका उपदेश उन दोनोंको अमृतके समान मीठा लगा। सो उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। पश्चात् राजा कनककेतुने विनयपूर्वक पुछा "हे प्रभो! यह पुरुष कौन है? और किस कारण यहाँ आया?" तब श्रीगुरुने कहा-"यह अंगदेश चंपापुर नगरके राजा अरिदमन उसकी रानी कुंदप्रभाका पुत्र श्रीपाल है। जब इसका पिता कालवश हो गया तब यह राजा हुआ परंतु इसको पूर्वसंचित अशुभ कर्मोंके योगसे सातसौ सखों सहित कोढ रोग होगया जिससे प्रजाको भी दुर्गंधिसे बहुत पीडा होने लगी। सो जब प्रजाकी पीड़ाका समाचार इसके कान तक पहुँचा, तब इस दयालु प्रजावत्सल धीरवीरने अपने काका वीरदमनको राज्य देकर सब सखों समेत वनका मार्ग लिया, और फिरते २ उज्जैनी नगरी मालवदेशमें आया। और वहाँ नगरके बाहिर उद्यानमें डेरा किया। सो वहाँके राजा पहुपालने इसके पूर्व पुण्यके उदयसे इससे संतुष्ट हो अपनी पुत्रीके भाग्यकी परीक्षा करनेके ही लिये वह अपनी गुण-रूपवती, सुशील कन्या मैनासुन्दरी इसको व्याह दी। सो उस सती शीलवती विदुषी कन्याने अपने पिताके द्वारा पसंद किये हुवे इस कोढ़ी वरको सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपने शुद्ध चित्तसे [illegible] तथा उपचारकर स्वधर्म

और अष्टान्हिका (सिद्धचक) व्रतके प्रभावसे इसको शीघ्र आराम कर लिया। अर्थात् वह नित्य श्रीजिनदेवकी पूजनाभिषेक करके गंधोदक लाती और सातसौ वीरों सहित इसपर छिड़कती थी, और निरंतर सिद्धचक्रका आराधन करती हुई, शीलव्रतकी भावना भाती थी, जिससे इसका कोढ थोडे ही दिनमें चला गया। और इसका शरीर जैसा कि तुम देखरहे हो, सुंदर स्वरूपवान् हो गया। पश्चात् कुछ दिनोंके पीछे इसे विचार हुआ कि मैं राजजँवाई कहाता हूँ और मेरे पिता, कुल व देशका कोई नाम भी नहीं लेता है, यह बडी लज्जाकी बात है। इसलिये पिछली रात्रिको घरसे निकलकर फिरते २ एक वनमें आया। वहाँपर एक विद्याधरको विद्या साधते और सिद्ध न होते देखकर आपने उसे सिद्ध करके सौंप दी, जिससे उसने प्रसन्न होकर दो विद्याएँ इसे भेंट कीं। फिर वहाँसे आगे चलकर यह वत्स नगरमें आया। सो वहाँपर धवलसेठके पाँचसौ जहाज समुद्रमें अटक रहे थे, उनको ढकेलकर चलाये। तब उसने अपने लाभका दशमाँ भाग देना स्वीकारकर अपने साथ इसे ले लिया। पश्चात् रास्तेमें आते हुए डाँकुओंने जहाज घेर लिये, और सेठको बाँधकर ले चले। तब इस वीरने निज भुजबलसे उन सबको बाँधकर, सेठको छुड़ा लिया, और फिर उन सब डाँकुओंको छोड़कर उनका बहुत सन्मान किया, जिससे उन्होंने प्रसन्न होकर इसे अमूल्य रत्नोंसे भरे हुए सात जहाज भेंट किये। वहाँसे यह महापुरुष उस धवलसेठके साथ चलकर यहाँपर आया है, सो जिनदर्शनके निमित्त ये वज्रमय कपाट उघाड़े हैं ”

इस प्रकार श्रीपालका चरित्र सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मुनिवरोंको नमस्कारकर श्रीपालजीको साथ ले अपने महलको आया, और शुभ घड़ी मुहूर्त विचारकर अपनी पुत्री रयनमंजूषाका व्याह इनके साथ कर दिया। इस प्रकार श्रीपाल· जी रयनमंजूषाको व्याहकर वहॉं सुखसे काल व्यतीत करने लगे, और धवलसेठ भी यथायोग्य वस्तु वेचने और खरीद करने लगा।

(१७) श्रीपालजीकी विदा।

इसतरह सुखपूर्वक समय व्यतीत होते मालूम नहीं होता था। सो जब बहुत समय बीत गया, और धवलसेठ भी व्यापार कार्य कर चुके, तब एक दिन श्रीपालजीसे सलाहकर राजाके पास आये, और विनती करके बोले–' हे नरनायक! प्रजावत्सल स्वा· मिन्! हमको आपके प्रसादसे बहुत आनन्द रहा और हमने बहुत सुख भोगा। अब आपकी आज्ञा हो तो हम लोग देशान्तरको प्रस्थान करें।' राजाको यद्यपि ये वियोगसूचक वचन अच्छे नहीं लगे, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन कठोरचित्त है, जो अपने स्व· जनोंको अलग करना चाहे, परंतु यह सोचकर कि यदि हठकर रक्खेंगे तो कदाचित् इनको दुःख हो इसलिये जैसी इनकी इच्छा हो वैसा ही करना उचित है। इससे वे उदास होकर बोले–" कि आप लोगोंकी जैसी इच्छा हो और जिस तरह आपको हर्ष हो, सो ही हमको स्वीकार है।" ठीक है, सज्जन पुरुषोंकी यही रीति होती है कि वे परके दुःखमें दुःखी और परके सुखमें सुखी होते हैं। फिर तो ये राजाके सम्बन्धी स्वजन थे, राजाने इनका

वचन स्वीकार करके जानेके लिये आज्ञा देदी, और बहुत धन, धान्य, दासी, दास, हिरण्य, सुवर्ण आदि अमूल्य रत्न भेंट देकर निज पुत्री रयनमंजुषाकी विदा कर दी।

चलते समय राजा बहुत दूर तक पहुँचानेको गये, और निज पुत्रीको इस प्रकार शिक्षा देने लगे "ए पुत्री! तुम अपने कुलके आचारको नहीं छोड़ना, कि जिससे मेरी हाँसी हो, तुमसे जो बड़े हों उनको भूल करके भी सन्मुख उत्तर नहीं देना, और सदा उनकी आज्ञा शिरोधार्य करना, छोटोंपर करुणा व प्रेम भाव रखना, दीनोंपर दया करना, स्वप्नमें भी किसीसे वैर विरोध नहीं करना, तुम अपनेसे वडे पुरुषोंको मुझ पिता समान, समवयस्कको भाईके समान और छोटेको पुत्रवत् समझना। मन वचन कायसे पतिकी सेवा करना, और उससे कभी भी विमुख नहीं होना। कैसा भी समय क्यों न आवे; परंतु मिथ्या देव, गुरु और धर्मको कभी नहीं मानना, निरंतर पंचपरमेष्टीका आराधन किया करना। देव गुरु धर्मको नहीं भूलना, और हे पुत्री! नरनारियोंका जो प्रधान भूषण शील व्रत है, सो मन वचन कायसे भले प्रकार पालन करना। तू इतनी बातें भले प्रकार पालन करना।

इस प्रकार पुत्रीको शिक्षा देकर राजा श्रीपालके निकट आये और मधुर शब्दोंमें कहने लगे—" हे कुमार! मुझसे आपकी कुछ भी सेवा शुश्रूषा नहीं हो सकी, सो क्षमा कीजिये और यह दासी जो आपको पादसेवनहारी दी है सो इससे भले प्रकार सेवा कराइयेगा। मैं आपको कुछ भी देनेको समर्थ नहीं हूं। केवल यह गुणहीन, बुद्धिहीन, कुरूप, कन्यारूपी लघु भेंट

दी है यही मेरी दीनताकी निशानी है। मैं आपसे किसी प्रकार ऋण रहित नहीं हो सकता हूँ।

तब श्रीपालजी बोले—"हे राजन्! आपने जो स्त्रीरत्न प्रदान किया है, वही सब कुछ है। इससे अधिक सम्पत्ति और सन्मान संसारमें और क्या हो सकता है? मुझे आपके प्रसादसे अर्थ और काम दोनोंकी प्राप्ति हुई, और अनेक प्रकार सुख भोगे हैं, इसलिये आपका मुझपर बहुत उपकार है। मैं आपकी बड़ाई कहाँतक करूँ?" ऐसे परस्पर शुश्रूषाके वचन कहे। पश्चात् राजा बोले-हे कुमार, यद्यपि जी नहीं चाहता है कि आपको मैं यहाँसे विदा होते हुए देखूँ, परंतु रोकना भी अनुचित समझता हूँ क्योंकि इससे आपके चित्तको कदाचित् संक्लेशता उत्पन्न हो और प्रस्थानके समय रोकनेसे अपशकुन तथा यात्रामें विघ्न समझा जाता है, इसलिये मैं आपसे केवल यह वचन चाहता हूँ कि—

साठ पाव सौ आगरे, सेर जास चालीस।
ता विच मुझको राखियो, यह चाहत बखशीस॥

अर्थात्—मुझे भूलियेगा नहीं। तथाः—

चक्रवर्तके तट रहे, चार अक्षरके माहि।
पहिलो अक्षर छोड़कर, सो दीजो मुह आइ॥

अर्थात्—दर्शन भी कभी कभी दिया कीजिये। औरः—

मुझ अवगुण लखियो नहीं, रखियो निजकुल रीति।
ऐसी सदा निबाहियो, मासा घटे न प्रीति॥

अर्थात्—मेरे गुण अवगुणोंको कुछ भी न चितारकर केवल अपने कुलकी रीतिको ही देखिये, और ऐसा निर्वाह कीजिये जिससे किंचित् मात्र भी प्रीति कम न होने पावे॥"

तब श्रीपालजीने कहा—

"कहन सुननकी चाव नहीं, लिखी पढी नहिं जात।
अपने मन सम जानियो, हमरे मनकी बात॥

अर्थात्—हे राजन्! जितना प्रेम आपका मुझपर रहेगा, मेरी ओरसे भी उससे कम कभी नहीं हो सकता। देखिये—

सिन्धुपार अंडा धरै, श्रमै दिशावर जाय।
टटीहरी पक्षी कबहू, अडा नहीं भुलाय॥

अर्थात्—टटीहरी पक्षी समुद्रके किनारे अंडे रखकर दिशांतरमें चले जाते हैं, परन्तु अपना अंडा नहीं भूलते हैं, इसी प्रकार मैं आपको भूल नहीं सकता। क्योंकि:—

यद्यपि चन्द्र आकाशमें, रहै पद्मिनी ताल।
तौ भी इतनी दूरसे, विकसावत रख ख्याल॥

अर्थात्—दूर चले जानेसे भी सज्जनोंकी प्रीति कम नहीं हो सकती है। जैसे चन्द्रमा आकाशमें रहते हुए भी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करता रहता है। और—

दुर्जन सेवा कीजिये, रखिये अपने पास।
तौहु होत न रंच सुख, ज्यों जल कमल निवास॥

अर्थात्—दुर्जनकी नित्य सेवा भी कीजिये और सदा पास रखिये तो भी प्रीति नहीं होती। जैसे जलमें रहकर भी कमल उससे नहीं मिलता है। इसलिये हे राजन्!:—

हम पक्षी तुम कमल दल, सदा रहो भरपूर।
मुझको कबहु न भूलियो, क्या नीरे क्या दूर॥ इत्यादि।

इस प्रकार श्वसुर जंवाईका परस्पर प्रेमालाप हुआ और पश्चात् श्रीपालजीने रयनमंजूषाको साथ लेकर हसद्वीपसे प्रस्थान किया।

---

(१७) समुद्र-पतन ।

श्रीपालजी रयनमंजूषाको लेकर जब धवलसेठके साथ जल यात्राको निकले, तब हंसद्वीपके लोगोंको इनके वियोगसे बहुत दुःख हुआ; परन्तु वे विचारे कर ही क्या सकते थे ?

परदेशीकी प्रीति त्यों, ज्यों वालूकी भीत ।
ये नहिं टिके बहुत दिवस, निश्चय समझो मीत ॥

श्रीपालको श्वसुरके छोड़नेका तथा रयनमंजूषाको भी माता-पिताको छोड़नेका उतना ही रंज हुआ जितना कि उनको अपनी पुत्री और जंवाईके छोड़नेमें हुआ था; परन्तु ज्यों ज्यों दूर निकलते गये, और दिन भी अधिक २ होते चले, त्यों त्यों परस्परकी याद भूलनेसे दुःख भी कम होता गया । ठीक है--

नयन उघारे सब लखै, नयन झपे कछु नाहिं ।
नयन विछोहो होत ही, सुध बुध कछु न रहाहिं ॥

वे दम्पति सुखपूर्वक काल व्यतीत करते और सर्व संघके मन रंजायमान करते हुए चले जा रहे थे कि एक दिन विनोदार्थ श्रीपालजीने रयनमंजूषासे कहा—हे प्रिये ! देखो, तुम्हारे पिताने विना विचारे और विना कुछ पूछे ही, अर्थात् मेरा कुल आदि जाने बिना ही मुझ परदेशीके साथ तुम्हारा व्याह कर दिया, सो यह बात उचित नहीं की ।" रयनमंजूषा पतिके ये वचन सुनकर एकदम सहम गई मानों पद्मिनी चन्द्रके अस्त होते ही मुरझा गई हो । वह नीची दृष्टिकर बड़े विचारमें पड़ गई कि हे दैव ! यह क्या चरित्र है ? यथार्थमें क्या यह बात ऐसी ही है ? कुछ समझमें नहीं आता है । जो यह बात सत्य है तो पिताने बड़ी

भूल की। चाहे जो हो, कुलीन कन्या अकुलीनका प्रसंग कभी नहीं कर सकती हैं। क्योंकि कहा है–

"पहुप गुच्छ शिरपर रहे, या सूखे वन माह।
तैसे कुलवतन सुता, अकुली घर नहिं जाह॥

हाय दैव! तेरी गति विचित्र है। तू क्या २ खेल दिखाता है। इत्यादि विचारोंमें मग्न हो गई और मुंहसे कुछ भी शब्द न निकला। तब श्रीपालजीने अपनी प्रियाको इस तरह खेदखिन्न देखकर कहा–"प्रिये! संदेह छोड़ो। मैंने यह वचन केवल तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये ही कहे थे। सुनो, मेरा चरित्र इस प्रकार है, ऐसा कहकर आद्योपांत कुल चरित्र कह सुनाया। तब रयनमंजूषाको सुनकर संतोष हुआ, और उन दोनोंका प्रेम पहिलेसे भी अधिक बढ गया। सब जहाजोंके स्त्री पुरुषोंमें इन दोनोंके पुण्यकी ही महिमा कही जाती थी।

ये दोनों सबको दर्शनीय हो रहे थे, परन्तु दिनके पीछे रात्रि और रात्रिके पीछे दिन होता है। ठीक इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मोंका भी चक्र चलता रहता है। कर्मको उन दोनोंका आनन्द अच्छा नहीं लगा और उसने बीचहीमें बाधा डाल दी अर्थात् वह कृतघ्नी धवलसेठ जो इनको धर्मसुत बनाकर और दशवाँ भाग देनेका वादा करके साथ लाया था, रयनमंजूषापर उसके अनूप रूप और सौन्दर्यको देखकर मोहित हो गया, और निरंतर इसी चिंतामें उसका शरीर क्षीण होने लगा।

एक दिन वह दुष्टमति उसे देखकर मूर्छित हो गिर पड़ा, जिससे सब जहाजोंमें बहुत कोलाहल हुआ। श्रीपालजी भी

वहाँपर दौड़े हुए आये और सेठको तुरत गोदमें उठालिया। शीतोपचारकर जैसे तैसे मूर्छा दूर की, तो उसे अत्यंत वेदनासे व्याकुल पाया। तब श्रीपालजीने मधुर नम्र शब्दोंसे पूछा—'हे तात! आपको क्या वेदना है? कृपाकर कहो। तब उस दुष्टने बात बनाकर कहा—धीर! मुझे बाईका रोग है। सो दस पांच वर्षके बाद वह उठकर मुझे बहुत पीडा देता है। और कोई कारण नहीं है। औषधोपचारसे ठीक हो जायगा। तब श्रीपाल उसे धैर्य देकर और अंग रक्षकोंको ताकीद करके अपने मुकामपर चले गये पश्चात् मंत्रियोंने पूछाः—हे सेठ, कृपाकर कहो कि यह रोग कैसे मिटे और क्या उपाय किया जाय? तब सेठ निर्लज्ज होकर बोला:—मंत्रियो! मुझे और कोई रोग नहीं है। केवल विरहकी पीड़ा है। सो यदि मेरे मनको चुरानेवाली कोमलांगी मृगनयनी रयनमजूषा मुझे नहीं मिलेगी तो मेरा जीना कष्टसाध्य है।

मंत्रियोंको सेठके ऐसे घृणित शब्द सुनकर बहुत दुःख हुआ। वे विचारने लगे कि सेठकी बुद्धि नष्ट हो गई है। इस कुबुद्धिका फल समस्त संघका क्षयकारी प्रतीत होता है। यह सोचकर उन्होंने नाना प्रकारकी युक्तियोंद्वारा सेठको समझाया परंतु सेठने एक भी न मानी। वह निरंतर वही शब्द कहता गया। निदान लाचार हो मंत्रियोंने कहा कि सेठ! यदि आप अपना हठ न छोड़ेंगे और इस घृणित कार्यका उद्यम करेंगे तो परिणाम अच्छा न होगा, क्योंकि रावण, त्रिखण्डी, प्रतिनारायण और कीचक आदिकी कथाएँ शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। परस्त्री सर्पिणीसे भी अधिक विषैली होती है। देखो हठ छोड़ो! हम लोग आज्ञा-

कारी हैं, जो आज्ञा होगी सो करेंगे ही, परंतु स्वामीकी हानि और लाभकी सूचना स्वामीको कर देना यह हमारा धर्म है। आप हम लोगोंकी बात पीछे याद करेंगे। इत्यादि बहुत कुछ समझाया, परन्तु जब देखा कि सेठ नहीं मानता है तब वे लाचार होकर बोले—

सेठ! इसका केवल एक यही उपाय है कि मरजियाको बुलाकर साध लिया जाय, जिससे वह एकाएक कोलाहल मचा दे कि "आगे न मालूम जानवर है, या चोर है, या कुछ ऐसा ही दैवी चरित्र है, दौड़ो, उठो, सावधान होओ।" सो इस अवाजको सुनकर श्रीपाल मस्तूलपर चढ़कर देखने लगेंगे, बस तब मस्तूल काट दिया जाय। इस तरह वे समुद्रमें गिर जावेंगे और आपका मनवाञ्छित कार्य सिद्ध हो जायगा। अन्यथा उसके रहते उसकी प्रियाका पाना क्या है, मानों अग्निमेंसे बर्फ निकालना है।

मंत्रियोंका यह विचार उस पापीको अच्छा मालूम हुआ। और उसने उसी समय मरजियाको बुलाकर बहुत भले प्रकार साध लिया। ठीक है, कामी पुरुष स्वार्थवश आनेवाली आपत्तियोंका विचार नहीं करते हैं। निदान एक दिन अवसर पाकर मरजियाने एकाएक चिल्लाना आरम्भ किया'—वीरो! सावधान होओ। सामने भयके चिह्न दिखाई दे रहे हैं। न मालूम कोई बड़ा जलजन्तु है, या चोरदल है, अथवा ऐसा ही कोई दैवी चरित्र है, तूफान है, या भंवर है, कुछ समझमें नहीं आता। इस प्रकार उसके चिल्लानेसे कोलाहल मच गया। सब लोग जहाँ तहाँ क्या है? क्या है? करके चिल्लाने और पूछने लगे। इतनेहीमें

श्रीपालजीको खबर लगी, सो वे तुरत ही उठ खड़े हुए और कहने लगे—"अलग होओ ! यह, क्या है ? क्या है ? कहनेका समय नहीं है। चलकर देखना और उसका उपाय करना चाहिये, ऐसा कहकर वे आगे बढ़ शीघ्र ही मस्तूलपर जा खड़े हुए और बड़ी सावधानीसे चारों ओर देखने लगे परन्तु कहीं कुछ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इतनेमें नीचेसे दुष्टोंने मस्तूल काट दिया, इससे वे बातकी बातमें समुद्रमें जा पड़े, और लहरोंमें ऊंचे नीचे होने लगे। यहां जहाजोंमें कोलहाल मच गया, कि मस्तूल टूट जानेसे श्रीपालकुमार समुद्रमें गिर पडे सो अब उनका पता नहीं लगता है कि लहरोंमें कहाँ गये ? जीवित हैं या मर गये ? इस प्रकार सबने शोक मनाया और धवलसेठने भी बनावटी शोक करना आरंभ किया !

वह कहने लगा—" हाय कोटीभट्ट ! तुम कहाँ चले गये ? तुम्हारे बिना यह यात्रा कैसे पूर्ण होगी ? हाय ! इन भरी जहाजोंको निज भुजबलसे चलानेवाले, लक्ष चोरोंको बाँधकर बंधनसे छुडानेवाले, हाय ! कहां चले गये ? हे कुमार ! इस अल्प वयमें असीम पराक्रम दिखाकर क्यों चले ? तुम बिना विपत्तिमें कौन रक्षा करेगा ? हा दैव ! तूने अनमोल रत्न दिखाकर क्यों छीन लिया ? इत्यादि केवल ऊपरी मनसे बनावटी रोना रोने लगा। अंतरगमें तो हर्षके मारे फूलकर कुप्पा हो रहा था। संघमें और बहुतोंको सचमुच ही दुःख हुआ। सो ठीक है—कहा भी है " जिसका घी गिर जाय, सो ही लूखा खाय " सो औरोंको सच्चा दुःख हो या झूठा, परन्तु धवलसेठको तो केवल बनावटी

क्षणिक शोक जिसको स्मसानिया शोक भी कहते हैं, था; क्योंकि औरोंका तो श्रीपालसे बिगाड़ ही गया था, परन्तु धवल जैसे कृतघ्नहृदय स्वार्थियोंका तो कांटा ही था सो निकल गया। किसीको कुछ भी हो परन्तु स्त्रियोंको तो शरण–आधार पतिके विना संसार अंधकारमय है। पतिके बिना सुंदर सुकोमल सेज भी विषम कंटक समान चुभती है। सुन्दर २ वस्त्र और आभूषण कठिन बधनोंसे भी अधिक दुख देनेवाले दिखाई देते हैं। संगीत आदि मधुर स्वर सिंहकी भयानक गर्जनासे भी भयानक मालूम होते हैं। षट्रसपूरित सुगंधित मिष्ट भोजन हलाहल विषसे भी कडुवा मालूम पड़ता है। यथार्थमें पतिविहीन स्त्रियोंका जीवन पृथ्वीपर अधंदग्ध जेवरीके समान है। हाय! जिस समय उस सुकुमार अबला रयनमंजूषाने यह सुना कि स्वामी समुद्रमें गिर गये हैं, उसी समय बेसुध होकर भूमिपर मूर्छित हो गिर पड़ी। मालूम होता था कि कदाचित् उसके प्राणपखेरू इस विनाशीक शरीररूपी घोंसलेसे विदा लेकर सदाके लिये चले गये हैं; परन्तु नहीं, अभी आयुकर्म निःशेष नहीं हुआ था। और कर्मको कुछ अपना खेल भी दिखाना शेष था इसीसे वह जीवित रह गई।

सखीजनोंने शीतोपचारकर मूर्छा दूर की, तो सचेत होते ही 'स्वामिन'! इस अबलाको छोडकर तुम कहां चले गये? तुम्हारे विना यह जीवनयात्रा कैसे पूरी होगी? हे नाथ! अब यह अबला आपके दर्शनकी प्यासी पपीहाकी नाईं व्याकुल हो रही है। हे कोटीभट्ट! हे कामदेव! हे कुलकमल! तुम्हारे विना मुझे एक पल

भी चैन नहीं पड़ता है। हे जीवदया प्रतिपालक प्राणेश्वर! दासीपर दयादृष्टि करो। मेरा चित्त अधीर हो रहा है। हे नाथ! सिद्धचक्रका वर्णन कौन करेगा? हा निर्दयी कर्म! तूने कुछ भी विचार न किया! मुझ निरपराधिनीको क्यों ऐसा दुःसह दुःख दिया? हाय! यह आयु स्वामीकी गोदमें ही पूरी हो गई होती तो ठीक था। अब यह संसार भयानक वन सरीखा दिखता है। हे त्रिलोकीनाथ! सर्वज्ञ प्रभो! हे वीतराग स्वामि! मेरे पतिको सहायता कीजिये। हे सिद्ध भगवान्! आपके आराधनमात्रसे वज्रमयी किवाड़ खुल गये थे, सो इस संकटमें भी स्वामीकी रक्षा कीजिये। स्वामिके निमित्त ये प्राण कुछ भी वस्तु नहीं है। हाय! मुझे नहीं मालूम कि मैंने ऐसे कौन कर्म किये थे, कि जिससे स्वामीका वियोग हुआ। क्या मैंने पूर्व जन्ममें परपुरुषकी इच्छा की थी? या पति–आज्ञा भंग की थी? या किसका व्रत भग करवाया था? या जिनधर्मकी निंदा की थी? या गुरुकी अविनय की थी? या किसीको पतिवियोग कराया था? या हिंसामय धर्मका सेवन किया था? या कुगुरु कुदेवकी भक्ति की थी या अपना व्रत भंग किया था? या असत्य भाषण किया था? या कन्दमूल आदि अभक्ष्य भक्षण किया था? हाय! कौनसा अशुभ उदय आया कि जिससे प्राण प्यारेका वियोग हुआ? हे स्वामिन्! आओ, दासीकी खबर लो। देखो, मैनासुंदरीसे आपका वादा था कि बारह वर्षमें आऊँगा, सो क्या भूल गये? नाथ! मुझपर नहीं तो उन्हींपर सही, दया करो! क्या करूं; और किस तरह धैर्य धरूं? अरे, कोई भी मेरे प्राणप्यारे भर्तारकी कुशल मुझे आकर

सुनाओ। हे समुद्र! तू स्वामीके बदले मुझे ही लेकर यमपुर पहुँचा देता तो ठीक था। स्वामीके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। मैं जीकर अब क्या करूंगी? परंतु आत्मघात महापाप है। सो भी स्वामी आपने नहीं विचार किया। यदि मुझसे सेवामें कुछ कमी हो गई थी, तो मुझे उसका दण्ड देते। अपने आपको क्यों दुःखसागरमें डुबोया? अब बहुत देर हुई, प्रसन्न होओ, और अबलाको जीवनदान दो, नहीं तो अब ये प्राण आपकी न्योछावर होने हैं! अब हे प्रभो! आपका ही शरण है, पार कीजिये। इस प्रकार रयनमजूषाने घोर विलाप किया। उसका शरीर कान्तिहीन मुरझाये फूल सरीखा दिखने लगा। खानपान छूट गया, शृंगार भी स्वामीके साथ समुद्रमें डूब गया। इस प्रकार उस सतीको दुःखसे विह्वल देखकर सब लोग यथायोग्य धैर्य बँधाने लगे और पापी धवलसेठ भी बनावटी शोकाकुल होकर समझाने लगा।

"हे सुंदरी! अब शोक छोड़ो। होनी अमिट है। इसपर किसीका वश नहीं। संसारका सब स्वरूप ऐसा ही है। जो उपजता है वह नियमसे नाश होता है। अब व्यर्थ शोक करनेसे क्या हो सकता है? अब यदि तुम भी उनके लिये मरजाओ तो भी वे तुम्हें नहीं मिल सकते हैं। अनेक स्थानोंसे परेवा आकर एक स्थानमें ठहरते हैं और अपनी २ अवधि पूरीकर चले जाते हैं। इस पृथ्वीपर बड़े बड़े चक्रवर्ती नारायणादि हो गये, परंतु कालने सबको अपना कवल बना लिया, कर्मवश विपत्ति सबके ऊपर आती है। कर्मवश रामचन्द्र लक्ष्मणका वनवास हुआ। कर्मवश सीताका पतिसे दो बार बिछोह हुआ। कर्मवश भरत चक्रवर्तीका मान

भंग हुआ। कर्मवश ही आदि तीर्थेश्वरको छः मास तक भोजनका अंतराय हुआ। तात्पर्य—कर्मने जगज्जीवोंको जीत लिया है, इसलिये शोक छोडो। हम लोगोंको भी असीम दुःख हुआ है, परंतु किससे कहें और क्या करें? कुछ उपाय नहीं है।

इस प्रकार सबने समझाकर रयनमंजूषाको धैर्य दिया। तब उस सतीने भी संसारके स्वरूपका विचारकर किसी प्रकार धैर्य धारण किया। वह सोचने लगी—यथार्थमें शोक करनेसे असाता वेदनी आदि अशुभ कर्मोंका वन्ध होता है, सो यदि इतने ही समयमें जितनेमें शोक कर रही हूँ! श्री पंचपरमेष्ठीका आराधन करूँगी, तो अशुभ कर्मकी निर्जरा होगी और यह भी आशा है कि उससे कदाचित् प्राणपतिका भी मिलाप हो जाय। क्योंकि सीताको इसी परमेष्ठी मंत्रकी आराधनासे पतिका मिलाप और अग्निका जल हो गया था। अंजनाको इसी मंत्रके प्रभावसे उसके प्राणप्रिय पतिकी भेंट हुई थी। और तो क्या, पशु और पक्षियोंकी भी इसी मंत्रके प्रभावसे शुभ गति हो गई है, सो मेरे भी इस अशुभ कर्मका अंत आवेगा और कदाचित् इसी मंत्रके आराधन करते हुए मरण भी हो गया, तो भी इस पराधीन पर्यायसे छुटकारा मिल जायगा। अहा! यह महामंत्र तीन लोकमें अपराजित है, अनादिनिधन मंगलरूप लोकमें उत्तम है और शरणाधार है। अब मुझे इसीका शरण लेना योग्य है। बस, वह सती इसी विचारमें मग्न हो गई अर्थात् मनमें परमेष्ठी मंत्रका आराधन करने लगी। खानपानकी भी सुध न रही। दो चार दिन योंही बीत गये। स्नान, विलेपन और वस्त्राभूषणका ध्यान ही किसे था? वह किसीसे बात भी

नहीं करती थी, न किसीकी ओर देखती थी। नींद, भूख, प्यास तो उसके पास ही नहीं रहे थे। उसको मात्र पंचपरमेष्टीका स्मरण और पतिका ध्यान था। वह पतिव्रता उन जहाजोंमें इस प्रकार रहती थी, जैसे जलमें कमल भिन्न रहता है। वह परम वियोगिनी इस प्रकार काल व्यतीत करने लगी।

---

(१८) धवलसेठका रयनमंजूषाको वहकाना।

धवलसेठके ये दिन बड़ी कठिनतासे जा रहे थे। इसलिये उसने शीघ्र ही एक दूतीको बुलाकर रयनमंजूषाको फुसलानेके लिये भेजा। सो ठीक है—

> कामलुब्धे कुतो लज्जा, अर्थहीने कुतः क्रिया।
> सुरापाने कुतः शौचं, मांसाहारे कुतो दया॥

अर्थात्—कामीको लज्जा कहाँ? और दरिद्रके क्रिया कहाँ? मद्यपानीके पवित्रता कहाँ! और मांसाहारीके दया कहाँ? सो पापिनी दूती व्यभिचारकी खानि लोभके वश होकर शीघ्र ही रयनमंजूषाके पास आई, और यहाँ वहाँकी बातें बनाकर कहने लगी "हे पुत्री! धैर्य रक्खो। होना था सो हुआ, गई बातका विचार ही क्या करना है! हाँ यथार्थमें तेरे दुःखका क्या ठिकाना है कि इस बालावस्थामें पतिवियोग हो गया है। सो इस बातकी कुछ चिंता है, क्योंकि कामका जीतना बड़ा कठिन है! हाय बेटी! तू कैसे उस कामके बाणोंको सहेगी? जिस कामके वशी-भूत होकर साधु और साध्वीने रुद्र व नारदकी उत्पत्ति की, जिस

कामसे पीड़ित होकर रावणने सीता हरण की, जिस कामके वशमें और तो क्या देव भी हैं, उस कामका जीतना बहुत कठिन है। और ठीक भी है। कहा है:—

घास फूसको खात हैं, तिनहिं सतावे काम।
षट रस भोजन जो करें, उनकी जाने राम॥

सो अब इस यौवनको पाकर व्यर्थ नहीं खो देना चाहिये, यौवन गया हुआ फिर नहीं मिलता है। केवल पछतावा ही हाथ रह जाता है। जिन्होंने तरुण अवस्था पाकर विषय नहीं सेया, उनका नरजन्म न पानेके बराबर है। तू अब श्रीपालका शोक छोडकर इस परम ऐश्वर्यवान्, रूपवान् और धनवान् सेठको अपना पति बना, मरेके पीछे कोई मर नहीं जाता है। मर गया तो जीका कंटक छूटा। ऐसी लाजसे क्या लाभ, जो जीवनके आनन्दपर पानी डाले। और वह तो धवलसेठका नौकर था। सो जब मालिक ही मिल जाय, तो नौकरकी क्या चाह करना? मुझे तेरी दशा देखकर बहुत दु:ख होता है। अब तू प्रसन्न हो, और सेठको स्वीकारकर तो मै अभी जाकर उसको भी राजी किये आती हूँ। मैं वृद्ध हुई हूँ, इसलिये मुझे संसारका अनुभव भले प्रकार है। तू अभी भोलीभाली नादान लड़की है, इसलिये मेरे वचन मानकर तु सुखसे काल बिता। इत्यादि अनेक प्रकारसे उस कुटिल दासीने समझाया परन्तु जैसे काले कम्बलपर और कोई रँग नहीं चढ़ता है, उसी प्रकार उस सतीके मनपर एक बात भी न जमी। अर्थात इस पापिनी दूतीका जादू इस पर न चला।

वह कुलवंती सती इसके मुँहसे निंद्य वचन सुनकर क्रोधसे

कांपने लगी, और डपटकर बोली 'बस चुप रह, दुष्टा पापिनी । तेरी जीभके सौ टुकड़े क्यों नहीं हो जाते हैं ? धवलसेठ मेरे पतिका धर्मपिता और मेरा श्वसुर-पिता समान है-क्या पुत्री और पिताका भी संयोग होता है ? पापिनी ! तूने जन्मांतरोंमें ऐसे २ नीच कर्म किये हैं जिससे रंडा कुट्टिनी हुई है और न मालूम अब तेरी क्या गति होगी ? इस जन्ममें रयनमंजूषाका पति केवल वे (श्रीपाल) ही हैं । और पुरुषमात्र उसको पिता, पुत्र व भाई तुल्य हैं । हट जा यहांसे, मुझे अपना मुँह मत दिखला । चली जा, शीघ्र ही यहाँसे हट जा, नहीं तो इसका बदला पावेगी ।" इस प्रकार सुंदरीने जब उसे घुडकाया तब वह अपनासा मुंह लेकर कांपती हुई पापी सेठके पास आई और बोली-"हे सेठ ! वह मेरे वशकी नहीं है । मुझे तो उसने बहुत अपमान करके निकाल दिया, जो थोड़ी देर और ठहरती तो न मालूम वह मेरी क्या दशा करती, इसलिये आप जानो व आपका काम जाने । मुझसे यह काम तो नहीं हो सकता है । दूती ऐसा उत्तर देकर चली गई ।

---

(१९) धवलसेठका रयनमंजूषाके पास जाना और देवसे दण्ड पाना ।

जब धवलसेठने दूतीको कृतकार्य हुआ न जाना, और उससे निराशाका उत्तर मिल गया, तब उस निर्लज्जने स्वयं रयनमंजूषाके पास उसे फुसलानेको जानेका विचार स्थिर किया । ठीक है कहा है.—

यः कश्चिन्न मकरध्वजस्य वशगः किं ब्रूमहे तस्कृते;
नो लज्जा न च पौरुषं न च कुलं कुत्रास्ति पापान्विते ।
नो धैर्यं च पितुर्गुरोश्च महिमा कुत्रास्ति धर्मस्थितिः;
नो मित्रं न च बांधवा न च गृहं ध्वस्तः स्त्रियं पश्यति ॥

अर्थात्–जो पुरुष कामके वश हो रहा है, उसकी क्या कथा है ? उसको न लज्जा, न बल, न कुल, न धैर्य, न धर्म, न गुरु, न पिता, न मित्र, न भाई और न घर, कुछ भी नहीं दिखता । केवल एक स्त्री ही स्त्री उसे दिखा करती है । और भी कहा है:—

कामार्तानां कुतः पापं, पापार्थीनां कुतः सुखं ।
नास्ति तत्प्राणिनां कर्म्मं, दुखदं यन्न कामजम् ॥
यथा माता यथा पुत्री, यथा भगिनी च स्त्रियः ।
कामार्थी च पुमानेता, एकरूपेण पश्यति ॥

अर्थात्—कामी नरको क्या पाप नहीं लगता ? और पापीको क्या सुख हो सकता है ? नहीं, कभी नहीं । देखो, कामी नर माता, बहिन और पुत्री सबको एकरूपसे–स्त्रीके ही रूपमें देखता है । सो शीघ्र ही वह पापी कामांध निर्लज्ज होकर उस सतीके निकट पहुँचा । वह धर्मधुरंधर स्त्री इसे सन्मुख आते देखकर अत्यन्त दुःखित हो भय और लज्जासे मुरझाये फूलकी नाईं हो गई और अपना मुँह ढाँक लिया और मनमें सोचने लगी कि "हा दैव ! तू क्या २ खेल दिखाता है ? एक तो मेरे प्राणवल्लभ भर्तारका वियोग हुआ । दूसरे यह दुर्बुद्धि मेरा शील भंग करनेके लिये सन्मुख आ रहा है । हो न हो, मेरे पतिको इसी पापीने समुद्रमें गिराया होगा । हाय ! एक दुःखका

तो अंत नहीं हुआ और दूसरा साम्हने आया। क्या करूँ? इस समय मेरा कौन सहायी होगा? वह दासी भी इसीने ही भेजी होगी। इन जहाजोंमें मेरा कोई हितू नहीं दिखता है। हे जिनदेव! आपहीका शरण है। मुझे किसी प्रकार पार उतारिये। लज्जा रखिये। तुम अशरणके शरणाधार और निरपेक्ष बन्धु हो।" इस प्रकार सोच रही थी कि वह पापी निकट आकर बैठ गया और विषलपेटी छुरीके समान मीठे शब्दोंमें हँस हँसकर कहने लगा:—

'हे प्रिये रयनमंजूषे! तुम भय मत करो। सुनो, मैं तुमसे श्रीपालकी बात कहता हूँ। वह दास था, उसको मैंने मोल लिया था। वह कुलहीन और वंशहीन था। बड़ा प्रपंची, झूठा और निर्दयीचित्त था। ऐसे पुरुषका मर जाना ही अच्छा है। तुम व्यर्थ उसके लिये इतना शोक कर रही हो। अब उसका डर भी नहीं रहा है। क्योंकि उसको गिरे हुए कई दिन भी होचुके हैं। सो जलचरोंने उसके मृतक शरीरतकको खा लिया होगा। इसलिये निःशंक होओ। जब काँटा निकल जाता है, तब दुःख नहीं रहता। मुझे उसके साथ तुमको रहते हुए देखकर दुःख होता था कि क्या ऐसी कुलवान् और रूपवान् कन्या हीनकुलीको सेवे! सो यह अन्याय कर्म भी न देख सका और उसने तुम्हारा पल्ला उससे छुड़ा दिया। अब तुम प्रसन्न होओ और मेरी ओर देखो। तुम मेरी स्त्री और मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मैं तुमको स्त्रियोंमें मुख्य बनाऊँगा और स्वप्नमें भी तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध न होऊँगा। अब तुम डर मत करो। शीघ्र ही अपना हाथ मेरे

गलेमें डाल दो, और अपने अमृत वचनोंसे मेरे कानों व मनको प्रफुल्लित करो, मेरा चित्त तुम्हारे विना व्याकुल हो रहा है। हे कल्याणरूपिणी! मृगनयनी! कोमलांगी! आओ और अपने कोमल स्पर्शसे मेरा शरीर पवित्र करो। देखो, ज्यों २ घड़ी जाती है, त्यों २ यौवनका आनन्द कम होता है। देखो, कहा है कि —

मनुज जनमको पाय कर, कियो न भोग विलास।
व्यर्थ गमायों जन्म तिन, कर आगामी आस॥
खबर नहीं है पलककी, पलकी जाने कौन।
जिन छोड़े सुख हालके, उनसे मूरख कौन॥
सदा न फूले केतकी, सदा न श्रावण होय।
सदा न यौवन थिर रहै, सदा न जीवै कोय॥

इसलिये हे प्यारी! मुझ प्यासेकी प्यास बुझाओ। हम जानते हैं कि नारी बहुत कोमल होती है, पर तुमको क्यों दया नहीं आती? क्यों तरसा रही हो? तुम तो अतिचतुर व बुद्धिवान हो। तुम्हें इतना हठ करना उचित नहीं है। जो कुछ कहना हो दिल खोलकर कहो। मैं सब कुछ कर सकता हूं। मेरे पास द्रव्यका भी कुछ पार नहीं है। राजाओंके यहां जो सुख नहीं, सो मेरे यहाँ है। मेरे ऐश्वर्यके साम्हने इन्द्र भी तुच्छ है। किन्तु प्यारी! केवल तुम्हारी प्रसन्नताकी कमी है सो पूर्ण कर दो, आओ, दोनों हृदयसे मिल लेवें"। इत्यादि नाना प्रकारसे वह दुष्ट बकने लगा।

इस समय उस सतीका दुःख वही जानती थी: क्योंकि शीलवती स्त्रियोंको शीलसे प्यारी वस्तु संसारमें कुछ नहीं है। वे शीलकी रक्षा करनेके लिये प्राणोंको भी न्योछावर कर देती है।

ये वचन उसको बाणसे भी अधिक चुभ रहे थे। जब उसने देखा कि यह पापी अपनी टें टें लगाये ही जा रहा है और किंचित् भी संकोच नहीं करता तब उसने नीति और धर्मसे संबोधन करनेका उद्यम किया। वह बोली:–

"हे तात! आप मेरे स्वामीके पिता और मेरे श्वसुर हो, श्वसुर और पितामें कुछ अंतर नहीं है। मैं आपकी पुत्री हूँ। चाहे अचल सुमेरु चल जाय, पर पिता पुत्रीपर कुदृष्टि नहीं कर सकता। प्रथम तो अशुभ कर्मने मेरे भर्तारका वियोग कराया, और अब दूसरा उससे भी कई गुणा दुःख यह आया। यदि और कोई कहता तो मैं आपसे पुकार करती परंतु आपकी पुकार किससे कहूँ। अपने कुल व धर्मको देखो! इस हाड़–मांस व मल–मूत्रसे भरी घृणित देहको देखकर क्या प्रसन्न हो रहे हो? चमड़ेकी चादरसे ढकी हुई है। दशों द्वारोंसे दुर्गंध निकलती है। आपके यहाँ देवांगनाओंके सदृश स्त्रियाँ हैं। मैं तो उनके सन्मुख दासीवत् हूँ। बड़े कुलवानोंका धर्म है कि अपने और परके शीलकी रक्षा करें। देखो, रावण व कीचक आदि परस्त्रीकी इच्छामात्रसे अपयश बांधकर नर्क चले गये। इसलिये हे पिताजी! आप अपने स्थानपर जाओ और मुझ दीनको व्यर्थ ही सताकर दुःखी मत करो। मुझ असहायापर कृपाकर यहाँसे पधारो। परंतु जैसे पित्तज्वरवालेको मिठाई भी कडुवी लगती है उसी तरह कामज्वरवालेको धर्मवचन कहाँ अच्छे लग सकते हैं!"

वह दुष्ट बोला–"प्राणवल्लभे! यह चतुराई रहने दो। ये जानता हूँ बातें तो मैं सब। यह विचार बूढ़े पुरुषोंको कि जिनके

शरीरमें पौरुष नहीं है, करना चाहिये। हम तुम दोनों तरुण हैं। भला, अग्निके पास घी कैसे विना पिघले रह सकता है? व्यर्थ बातोंसे क्या होगा? आओ, मिल लो, नहीं तो ये प्राण तुम्हारे न्यौछावर हैं। जो कृपा न करोगी तो मेरी हत्या तुम्हारे सिर होगी। अब तुम्हारी इच्छा! मारो चाहे बचाओ" ऐसा कहकर उस पापीने अपना माथा भूमिपर रख दिया। जब उस सतीने देखा कि यह दुष्ट नीतिसे नहीं मानता, और अवश्य ही बलात्कार-कर मेरा शरीर स्पर्श करेगा, तब उसने क्रोधसे भयंकर रूप धारण-कर कहा—"रे दुष्ट पापी निर्लज्ज! तेरी जीभ क्यों गल नहीं जाती? हे नीच दुर्बुद्धि निशाचर! तुझे ऐसे घृणित शब्दोंको कहते शर्म नहीं आती है? रे धीठ अधम क्रूर! तू पशुसे भी महान् पशु है। तेरी क्या शक्ति है जो शीलधुरंधर स्त्रीका शील हरण कर सके? यह पतिव्रता अपने प्राणोंको जाते हुए भी अपने शीलकी रक्षा करेगी। तू और चाहे सो कर सकता है, परन्तु मेरे शीलको कभी नहीं बिगाड सकता। एक वे (श्रीपाल) ही इस भवमें मेरे स्वामी हैं। और उनकी अनुपस्थितिमें संयम मेरा रक्षक है। रे निर्लज्ज! मेरे साम्हनेसे हट जा, नहीं तो अब तेरी भलाई नहीं है"

वह पापी इससे भी नहीं डरा, और आगेको बढ़ा। यह देख उस सतीको चेन न रहा। कुछ देरतक काठ–पुतलीसी रह गई, परन्तु थोडी देरमें वह जोरसे पुकारने लगी—हे दीनबंधो दयासागर प्रभो! मेरी रक्षा करो,

शिवनारी भर्तार प्रभु; तुमपद मेरी दौर ।
जैसे काग जहाजको, सूझत और न ठौर ॥
दीनबन्धु करुणानिधि, धन्य त्रिलोकीनाथ ।
शरणागत पाले घने; कीन्ह अनाथ सनाथ ॥
सीता, द्रौपदि, अञ्जनी, मनोरमादिक नार ।
विपति समय सुमरी तुमहिं, दीनो तिनहिं उबार ॥
अबकी बार पुकार सुन, सुन लीजे महाराज ।
ढील न कीजे रंचहू; राखो मेरी लाज ॥
धवलसेठ हो कामवश, लाज दई छिटकाय ।
चाहै शील बिगाड़ने, यह नहिं कोई सहाय ॥
शील नशै जो आज सुन, तो मैं त्यागूँ प्राण ।
यामें शक न रंच है, यही हमारी आन ॥ इत्यादि ।

इस प्रकार वह भगवानकी स्तुति करने लगी। अहा ! जिसका कोई सहाय नहीं हो और वह सच्चा शीलवान् व्रतवान् दृढचारित्री हो, तो उसकी रक्षा देव करते हैं। उस सतीके अखंड शीलको कौन खंडन कर सकता था ? एक धवल तो क्या कोट धवल उसको कुछ भी निर्बल नहीं कर सकते थे। इसीलिये उसके दृढ शीलके प्रभावसे वहाँ तुरन्त ही जलदेव आकर उपस्थित हुआ और उसने धवलसेठकी मुश्कें बाँध लीं तथा गदासे बहुत मार लगाई। न छु रेत आँखोंमें भर दी, मुँह काला कर दिया, मुँहमें मल मूत्र भर दिया, और अनेक प्रकारसे निंदाकर कुवचन कहने लगा। तात्पर्य—उसकी बड़ी दुर्दशा की, और बहुत दण्ड दिया। सब लोग एक दूसरेका मुँह ताकने लगे, परंतु बतावें किससे ? क्योंकि मार ही मार दिख रही थी, परंतु मारनेवाला कोई नहीं दिखता था, अन्तमें मंत्री लोग यह सोचकर कि कदा-

चित यह दैवी चरित्र है और इस सतीको धर्मसे सहाय हुई हो, रयनमंजूषाके पास आये, और हाथ जोड़कर खडे हो प्रार्थना करने लगे—

हे कल्याणरूपिणी पतिव्रते ! धन्य है तेरे शीलके माहात्म्यको ! हम लोग तेरे गुणोंकी महिमा कहनेको असमर्थ हैं। तू धर्मकी धारी और सच्ची जिनशासनके व्रतोंमें लवलीन है। तेरे भावको इस दुष्टने न समझकर अपनी नीचता दिखाई। अब हे पुत्री ! दया करो ! इस समय केवल इस पापीका ही विनाश नहीं होता है: परन्तु हम सबका भी सत्यानाश हुआ जाता है। हम सब तेरे शरण हैं, हमको बचावो। इन लोगोंके दीन वचनोंको सुनकर सतीको दया आ गई, तब वह क्रोधको छोड खड़ी हो प्रभुकी स्तुति करने लगी–" हे जिननाथ ! धन्य हो ! सच्चे भक्तवत्सल हो ! जो ऐसे कठिन समयमें इस अबलाकी सहायता की। हे प्रभो ! तुम्हारे प्रसादसे जिस किसीने मेरी सहायता की हो, वह इन दोनोंपर दयाकरके छोड़दे। यह सुनकर उस जलदेवने उसे बहुत कुछ शिक्षा देकर छोड दिया, और रयनमंजूषाको धैर्य देकर बोला–" हे पुत्री ! तू चिंता मत कर। थोड़े ही दिनमें तेरा पति तुझे मिलेगा, और वह राजाओंका राजा होगा। तेरा सन्मान भी बहुत बढ़ेगा। हम सब तेरे आसपास रहनेवाले सेवक हैं, तुझे कोई भी हाथ नहीं लगा सक्ता है।

इस तरह वह देव धवलसेठको कुकर्मोंका दण्ड देकर और रयनमंजूषाको धैर्य बंधाकर अपने स्थानको गया और सतीने अपने पतिके मिलनेका समाचार सुनकर, व शीलरक्षासे प्रसन्न होकर

प्रभुकी बड़ी स्तुति की, और अनशन, ऊनोदर आदि तप करके अपना काल व्यतीत करने लगी। वह पापी धवलसेठ लज्जित होकर उसके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोला—" हे पुत्री! अपराध क्षमा करो। मैं बड़ा अधम पापी हूँ और तुम सच्ची शीलधुरधर हो। तब सतीने उसको क्षमा किया। सत्य है—

" उत्तमे क्षणिक. कोपो; मध्यमे प्रहरद्वयं।
अधमस्य अहोरात्रिं; नीचस्य मरणान्तकम्॥ "

अर्थात्—उत्तम पुरुषोंका कोप क्षणमात्र (कार्य होनेतक), मध्यम पुरुषोंका दो प्रहर (भोजन करनेतक), जघन्य पुरुषोंका दिन रात और नीचोंका मरनेतक तथा जन्मान्तरों तक रहता है।

(२१) श्रीपालका गुणमालासे व्याह।

अब इस वृत्तातको यहाँ छोड़कर श्रीपालका हाल कहते हैं। वह महामति जब समुद्रमें गिरा, तब ही उसने धवलसेठके माया-जालको समझ लिया, परन्तु उत्तम पुरुष विना साक्षी निर्णय किये कभी किसीपर दोषारोपण नहीं करते हैं। किन्तु अपने ऊपर आये हुए उपसर्गको अपने पूर्वकृत कर्मोंका फल समझकर समभावोंसे भोगनेका उद्यम करते है। इसीलिये उक्त धीर पुरुषने अपने भावोंको किंचित् भी मलिन नहीं किया और परमेष्टी मंत्रका आराधन करके समुद्रसे तिरनेका उद्यम करने लगा। ठीक है,

" जो नर निज पुरुपार्थसे; निजकी करै सहाय।
दैव सहाय करै तिनहिं; निश्चय जानो भाय॥ "

बस, उनको उस समुद्रकी लहरोंमें उछलता हुआ एक लकड़ीका तख्ता दृष्टिगत हुआ। सो उसे पकड़कर उसीके सहारे तिरने लगे। इनको दिनरात सब समान ही था। खानापीना केवल एक जिनेन्द्रका नाम ही था और वही त्रैलोकी प्रभु उन्हें मार्ग बतानेवाला था। वह महाबली गंभीरता और साहसमें समुद्रसे किसी प्रकार कम न था। सो भला, समुद्रकी इतनी शक्ति कहाँ जो उसे डुबा दे? दूसरी बात यह थी कि पत्थर पानी-पर नहीं तिर सकता है, परंतु यदि काठकी नावमें मनों पत्थर भर दीजिये, तो भी न डूबेगा! इसी प्रकार वह एक तो चरम-शरीरी था। दूसरे जिनधर्मरूपी नावपर सवार था, सो भला जो नाव इस अनादि अनन्त संसारसे पार उतार सकती है उस नावसे इतनासा समुद्र तिरना तो कुछ भी कठिन न था। कहा है;—

जल थल वन रण शत्रु ढिग, गिरि गुह कन्दर माँहि।
चोर अग्नि वनचरोंसे, पुण्यहि लेय बचाहि॥

इस प्रकार महामंत्रके प्रभावसे तिरते २ वे कुंकुमद्वीपमें जाकर किनारे लगे। सो मार्गके खेदसे व्याकुल होकर निकट ही एक वृक्षके नीचे अचेत सो गये। इतनेहीमें वहाँके राजाके अनु-चर वहाँपर आ पहुँचे और हर्षित हो परस्पर बतलाने लगे कि धन्य है! राजकन्याका भाग, कि जिसके प्रभावसे यह महापुरुष अपने भुजबलसे अथाह समुद्र पारकर यहाँ पहुँचा है। अब तो अपने हर्षका समय आ गया, यह शुभ समाचार राजाको देते ही वे हम सबको निहाल कर देवेंगे। अहा! यह कैसा सुन्दर पुरुष

है ? विधाताने अंग अंगकी रचना बड़े सम्हाल करके की है। यह यक्ष है कि नागकुमार ? इन्द्र है कि विद्याधर ? या कि गंधर्व है ? इत्यादि परस्पर सब बातें कर ही रहे थे कि श्रीपालकी नींद खुल गई। वे लाल २ नेत्रों सहित उठकर बैठ गये, और पूछने लगे,—" तुम लोग कौन हो ? यहाँ क्यों आये ? मुझसे क्यों डरते हो ! और मेरी स्तुति क्यों कररहे हो ? सो निःशंक होकर कहो। " तब वे अनुचर बोले,—" महाराज, इस कुंकुम-पुरका राजा सत्तराज और रानी वनमाला है। सो अपनी नीति और न्यायसे सम्पूर्ण प्रजाके प्रेमपात्र हो रहे हैं। इस नगरमें कोई भी दीन दुःखी दिखाई नहीं देते। उस राजाके यहाँ रूप और गुणकी निधान, शीलवान् और सर्वकलाप्रवीण, गुणमाला एक कन्या है। एक दिन राजाने कन्याको यौवनवती देखकर श्रीमुनिसे पूछा था–हे देव ! इस कन्याका वर कौन होगा ? तब श्रीगुरुने अवधिज्ञानके बलसे जानकर यह कहा था कि जो पुरुष समुद्र तिरकर यहाँ आवेगा, वही इसका वर होगा। उसी दिनसे राजाने हम लोगोंको यहाँ रखा है। सो आप पधारो और अपनी नियोगिनीको प्रसन्नतापूर्वक व्याहो। इस तरह कितने ही अनुचर श्रीपालको नगरकी ओर चलनेको विनती करने लगे। और कितनोंने जाकर राजाको खबर दी, सो राजाने हर्षित हो उन लोगोंको बहुत इनाम दी और उबटन, तेल, फुलेल, आदि भेजकर श्रीपालजीको स्नान कराया, और सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराकर बड़े उत्साहसे नगरमें लाये। घरोंघर मंगल गान होने लगा। राजाने शुभ मुहूर्तमें निजपुत्री गुणमालाका पाणीग्रहण

श्रीपालसे विनायकयंत्र और अग्नि व पंचोंकी साक्षीपूर्वक कर दिया तथा बहुतसा दहेज, नगर, ग्राम, हाथी, घोड़ेसवार, प्यादे, और वस्त्राभूषण देकर कहने लगे कि:—

"हे कुमार ! मैं आपको कुछ भी देनेको समर्थ नहीं हूँ। केवल आपकी सेवाके लिये यह दासी (पुत्रीको दिखाकर) दी है। सो धर्म, अर्थ और कामसे पालन कीजियेगा तथा मुझसे जो कुछ सेवामें कमी हुई हो, सो क्षमा कीजियेगा। मनमें कुछ भी विराग भाव न रखियेगा और सदैव मुझपर कृपा दृष्टि बनाये रहियेगा।"

तब श्रीपालने कहा,–हे राजन् ! मै तो विदेशी पानीमे बहता हुआ निराधार आया था, सो आपने दया करके कन्यारत्न मुझे दिया, और सब तरह उपकार किया है, सो मै कहाँतक बड़ाई करूँ? मैं यथाशक्ति सेवा करनेको तैयार हूँ। राजा इस प्रकारका उत्तर सुनकर प्रसन्न हुआ, और श्रीपाल गुणमाला सहित सुखसे समय बिताने लगे परन्तु जब कभी रयनमंजूषा व मैनासुदरीकी सुध आ जाती, तो उदास हो जाते थे।

एक दिन श्रीपालजी इसी प्रकार विचारमें बैठे थे कि गुणमाला वहाँ आई, और बातों ही बातोंमें वह पूछने लगी,–प्राणनाथ! आपका कुल वंश जाति तथा यहांतक पहुँचनेका कारण सुनना चाहती हूँ, सो कृपाकर कहो। यह बात सुनकर श्रीपालको हँसी आ गई, और मनमें सोचने लगे कि मै अपना वृत्तांत इससे कहूँ तो इसको उसका निश्चय कैसे होगा? ऐसा समझ चुप रहे। तब गुणमालाकी वह इच्छा और भी बढ गई। इसलिये वह और भी आग्रहपूर्वक पूछने लगी कि बताइये, राज्य क्यों छोड़ा? समुद्रमें

कैसे गिरे ? और मगरमच्छादिसे बचकर किस प्रकार यहाँ तक आये ? आपका चरित्र बहुत विचित्र मालूम होता है, इसीसे सुननेकी इच्छा बढ़ रही है।

तब श्रीपालजी बोले—हे प्रिये ! पानी तो मेरा बाप, कीचड़ मेरी मा, बड़वानल मेरा भाई, और तरंगें मेरा परिवार है। सो उनको छोड़कर तुम्हारे पास तक आया हूं। बस यही मेरा चरित्र है; क्योंकि इससे अधिक जो मैं कहूं तो बिना साक्षी यहां कौन मानेगा ? यह सुनकर गुणमाला उदाससी हो गई; क्योंकि कुलीन कन्याओंको सब कुछ रूप अनूप होनेपर भी कुलहीन पुरुषकी चाह नहीं रहती है। वह लज्जित हो नीचा शिर करके बैठ रही।

निज प्रियाकी यह दशा देख श्रीपालजी बोले—" प्रिये ! यदि तुमको मेरा विश्वास हो, और सुनना चाहती हो तो सुनो। मैं अंगदेश चंपापुरके राजा अरिदमनका पुत्र हूँ। पूर्वकर्मवश दुःखी हो काकाको राज्य देकर सातसौ सखों सहित उज्जैन आया। और वहाँके राजा पहुपालकी कन्या मैनासुन्दरीसे व्याह किया। उस सतीके सिद्धचक्रव्रतके प्रभावसे मेरा और सब वीरोंका रोग मिटा। वहाँसे चलकर एक विद्याधरको विद्या साधकर दी, और उससे जलतारिणी शत्रुनिवारिणी दो विद्याएँ भेंटस्वरूप स्वीकारकर तथा उसे सेवक बनाकर आगे चला और धवलसेठके पाँचसौ जहाज समुद्रमें चलाये तब उसने साथ चलनेको आग्रह किया सो उसीके साथ चल दिया। सो रास्तेमें एक लक्ष चोरोंको वश किया और उनने रत्न सहित सात जहाज भेंट किये उसे लेकर हंसद्वीपमें आया। वहाँपर जिनालयके वज्रमयी कपाट खोले

और वहाँके राजाकी कन्या रयनमंजूषाको साथ ले आगे चला, सो कर्मयोगसे समुद्रमें गिर गया, सो पंचपरमेष्ठी मंत्र तथा जिनधर्मके प्रभावसे यहाँतक आ पहुँचा हूँ। हे प्रिये! मेरी कथा इस प्रकार है।" गुणमाला स्वामीके मुखसे उनका सब वृत्तांत जानकर बहुत प्रसन्न हुई। और ये अपनी चतुराईसे राजा तथा प्रजा सबको प्रिय हो गये।

(२२) कुंकुमद्वीपमें धवलसेठ।

कुछ दिनों बाद धवलसेठके जहाज भी चलते २ कुंकुमद्वीपमें आये। सो वहाँपर डेराकर सेठ बहुत मनुष्यों सहित अमूल्य २ वस्तुएँ लेकर राजाकी भेंटके लिये गया। यथायोग्य नमस्कारकर वे चीजें भेंट की। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सेठका बहुत सन्मान किया। जब इत्र, पान, इलायची वगैरः हो चुकी, तब सेठकी दृष्टि श्रीपालके ऊपर पड़ी, सो देखते ही वह फूलकी नाई कुम्हला गया। मुँह स्याम पड़ गया। चिंतासे प्रस्वेद निकलने लगा। श्वासोच्छ्वास रुक गया, भयसे कॉपने लगा। सुधि-बुधि सब भूल गई। परन्तु यह भेद प्रगट न हो इसलिये शीघ्र ही राजासे आज्ञा मॉगकर अपने स्थानपर आया और तुरंत ही मंत्रियोंको बुलाकर विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये? क्योंकि जिसने मेरे बहुत उपकार किये थे और मैंने उसे ही समुद्रमें गिराया, सो वह अपने बाहुबलसे तिरकर यहांतक आ पहुँचा है। और न मालूम कैसे राजासे उसकी पहिचान हो गई है?

तब एक वीर बोला—"हे सेठ ! पुण्यसे क्या क्या नहीं हो सकता है ? वह समुद्र भी तिर आया और राजाने उसे अपनी गुणमाला कन्या भी व्याह दी है" यह सुन सेठ और भी दुःखी हो गया। ठीक है, दुष्ट मनुष्य किसीकी बढ़ती देखकर सहन नहीं कर सकते हैं। तिसपर यह तो श्रीपालका चोर है, सो चोर साहुसे भयभीत होता ही है। वह मारे भय और चिंतासे विकल हो गया और भोजन पान सब भूल गया। मनमें सोचने लगा कि किसी तरह इसे राजाके यहाँसे अलग करा दूँ तो मैं बच सकूँगा, अन्यथा यह अब मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा, इसलिये मंत्रियो ! अब कुछ ऐसा ही उपाय करना चाहिये। तब मंत्री बोले—सेठ ! चिंता छोड़ो और उसी दयालु कुमार श्रीपालका शरण लो तो तुमको कुछ भी कष्ट न होगा, और यह भेद भी नहीं जाना जायगा परन्तु यह बात सेठको अच्छी न लगी। इतनेमें उनमेंसे एक दुष्ट मंत्री बोला—सेठ ! सिंहके साम्हने क्या मृग जाकर रक्षा पा सकता है ? जिसके साथ आपने भलाईके बदले बुराई की है, सो क्या वह अवसर मिलनेपर तुमको छोड़ेगा ? नहीं, कभी नहीं छोड़ेगा। इसलिये हमारी रायमें यह आता है कि भाँडोंको बुलाकर उन्हें द्रव्यका लालच देकर दर्बारमें भेजो, सो वे श्रीपालको देखकर बेटा भाई पति आदि कहकर लिपट जावेंगे, इससे राजा उसे भाँडोंका पुत्र जानकर प्राण दंड देवेगा और अपन सब बच जावेंगे, कारण, यहाँ तो उसकी जान पहिचान कुछ है ही नहीं, इसलिये यह बात जम जावेगी।

सेठको यह विचार अच्छा मालूम हुआ और वह उस

मंत्रीकी बुद्धिकी सराहनाकर कहने लगा—बस, अब इस काममें देरी करना ठीक नहीं है; कारण, शत्रुको अवसर न मिलने पावे, नहीं तो न मालूम क्या कर डालेगा ? यद्यपि साथवालों वा अन्य मंत्रियोंने बहुत समझाया कि सेठ ! देखो, ऐसा काम न करो, नहीं तो बहुत पछताओगे, और जो उसका शरण लोगे तो बाल भी बाँका न होने पावेगा । परन्तु कहा है—बुद्धि कर्मानुसारिणी होती है इसलिये किसीके कहने वा समझानेसे क्या होसकता था ? ठीक है—आपत्ति आनेके पहिले ही बुद्धि नष्ट होजाती है, धर्म भी छोड़ देता है, कायरता बढ जाती है, सत्य वचन नहीं निकलता, कषायें बढ़ जाती है । शील, संयम, दया, क्षमा, संतोष, विवेक, साहस और धन सब चला जाता है । सो सेठकी भी यही दशा हुई । उसने किसीका कहना न माना, और भाँड़ोंको बुलाकर उन्हें बहुत द्रव्यका लालच देकर समझा दिया कि तुम राजसभामें अपना खेल दिखाये बाद श्रीपालके गले लगकर मिलाप करने लगना और अपना २ सम्बन्ध प्रकट करके अपने साथ चलनेको आग्रह करना, और राजाके कहने पूछनेपर कहना—महाराज ! हम जहाजमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट गया, और हम लोग किसी तरह किनारे लगे, सो और सब तो मिल गये, केवल दो लड़के रह गये थे । सो छोटा तो यह आज आपके दर्शनसे पाया और एक बेटा जो इससे दो वर्ष बड़ा था अब तक नहीं मिला है । ऐसा कहकर राजाको बहुत धन्यवाद देने लगना, इस प्रकार समझाकर उन भाँड़ोंको सेठने राज्यसभामें भेजा ।

(२३) भाँड़ोंका कपट।

पश्चात् वे भाँड सब मिलकर राज्यसभामें गये और राजाको यथायोग्य प्रणामकर उन लोगोंने पहिले अपनी नकलें इत्यादि करके राजासे बहुतसा पारितोषक प्राप्त किया, पश्चात् चलते समय सब परस्पर मुहाँमुह देखकर अंगुलियोंसे श्रीपालकी ओर इशारा करके बतलाने लगे। यों ही ढंग बनाकर, थोडी देरमें ज्यों ही राजाकी ओरसे श्रीपाल उन लोगोंको बीड़ा देनेके लिये गये और अपना हाथ उठाकर बीड़ा देने लगे, त्यों ही सबके सब भाँड़ हाय हाय! करके उठ पड़े, और श्रीपालको चारों ओरसे घेर लिया। कोई बेटा, कोई पोता, कोई पड़पोता, कोई भतीजा, कोई पति इस तरह कह २ कर कुशल पूछने लगे, और राजाको आशीर्वाद देकर बलैयाँ लेने लगे, कहने लगे—अहा! आज बड़ा ही हर्षका समय मिला जो प्यारा बेटा हाथ लगा। हे नरनाथ! तुम युग युगांतरों तक जीओ! धन्य हो महाराज प्रजापालक! तुमने हम दीनोंको पुत्रदान दिया है। यह चमत्कार देखकर राजाने उन भाँड़ोंसे कहा—"तुम लोग सच्चा २ हाल मेरे सामने कहो, नहीं तो सबको एक साथ सूलीपर चढा दूँगा। नीच! निर्लज्जो! तुम लोगोंको कुछ भी ध्यान नहीं है कि किसी कुलीन पुरुषको अपना पुत्र कहरहे हो! तब वे भाँड हाथ जोड़ दीन होकर बोले—"महाराज दीनानाथ, अन्नदाता! यह लड़का हमारा ही है। मेरी स्त्रीके दो बालक थे, सो एक तो यही है और दूसरेका पता नहीं है। हम सब लोग समुद्रमें एक नावमें बैठे आ रहे थे, सो तूफानसे जहाज फट गया, और हम लोग

लकड़ीके पटियोंके सहारे कठिनतासे किनारे लगे। सो और सब तो मिल गये; परन्तु केवल एक लड़का नहीं मिला है। हे महाराज! धन्य हो कि आपके दर्शनसे द्रव्य और पुत्र दोनों ही मिले।

भाँड़ोंके कथनको सुनकर राजाको बहुत पश्चात्ताप हुआ कि हाय! मैंने विना देखे और कुल जाति आदि विना ही पूछे कन्या व्याह दी। निस्सन्देह यह बड़ा पापी है कि जिसने अपना कुल जाति आदि कुछ प्रगट नहीं किया। फिर सोचने लगा—नहीं, इस बातमें कुछ भेद अवश्य होना चाहिये; क्योंकि श्रीगुरुने जिस भाँति कहा था, उसी भाँति यह पुरुष प्राप्त हुआ है, और हीन पुरुष कैसे ऐसा अथाह समुद्र पार कर सकता है, सिवाय इनके इन भाँड़ोंका और इसका रंग, रूप और वर्ताव तो बिलकुल मिलता नहीं है। देव जाने क्या भेद है? फिर कुछ सोचकर श्रीपालसे पूछने लगे—"अहो परदेशी! तुम सत्य कहो—कौन हो, और भाँड़ोंसे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?" तब श्रीपालने सोचा—यहाँ मेरे वचनकी साक्षी क्या है। ये बहुत और मैं अकेला हूँ। विना साक्षी कहनेसे न कहना ही अच्छा है। यह सोचकर वह धीर वीर निर्भय होकर बोला—महाराज! इन लोगों-का ही कथन सत्य है। ये ही मेरे मा बाप और स्वजन सम्बन्धी है। राजाको श्रीपालके इस कथनसे क्रोध उबल उठा, और उन्होंने तुरंत ही चांडालोंको बुलाकर इनको सुलीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा दे दी। सत्य है, न जाने किस समय किसको कौन कर्म उदय आकर दुःख देता है, और नया खेल दिखाता है।

———

(२४) सूलीकी तैयारी।

राजाकी आज्ञासे चांडालोंने श्रीपालको बाँध लिया और सूली देनेके लिये ले चले। तब श्रीपाल सोचने लगे कि यदि मैं चाहूँ तो इन सबको क्षणभरमें संहार कर डालूँ, परन्तु ऐसा करनेसे भी क्या सुकुलीन कहा जा सकता हूँ ? कदापि नहीं, इसलिये अब उदयमें आये हुए कर्मोंको सहन करना ही उचित है, जिससे फिर आगेके लिये शेष न रहें, देखूँ अभी और क्या २ होता है ? इस तरह सोचते हुए जा रहे थे कि किसी राजमहलकी दासीने यह सब समाचार गुणमालासे जाकर कह दिया। सुनते ही वह मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी। जब सखियोंने शीतोपचार करके मूर्छा दूर की, तो हे स्वामिन्! हे प्राणाधार! कहकर चिल्ला उठी, और दीर्घ निःश्वास डालती हुई तुरत ही श्रीपालजीके निकट पहुँची और उन्हें देखते ही पुनः मूर्छित होकर गिर पड़ी। जब मूर्छा दूर हुई, तो भयभीत मृगीकी नाँई सजल नेत्रोंसे पतिकी ओर देखने लगी, और आतुर हो पूछने लगी—'भो स्वामिन्! मुझ दासीपर कृपाकर सत्य २ कहो कि आप कौन और किसके पुत्र हैं ? और इन भाँडोंने आपपर कैसे यह मिथ्यारोप किया है ?

तब श्रीपाल बोले—"प्रिये! मेरा पिता भाँड और माता भाँडिनी और सब कुटुम्बी भाँड हैं और इसकी हालमें साक्षी भी होचुकी है फिर इसमें संदेह ही क्या है ? तब गुणमाला बोली—हे नाथ! यह समय हास्य करनेका नहीं है। कृपाकर यथार्थ कहिए! पहिले तो मुझसे कुछ और ही कहा था और मुझे उसी

पर विश्वास है, परन्तु यह आज मैं कुछ विचित्र ही चमत्कार देख रही हूँ। मुझे विश्वास नहीं होता कि आपके माता पिता भांड हों। आपका नाम, काम, रूप, शील, साहस, दया, क्षमा, सन्तोष, धीरज, बल और गम्भीरता आदि गुण कुछ भी उनमें नहीं हो सकते है, फिर आपको उनकी संतान कैसे कहा जाय? आपको जिनदेवकी दुहाई है, सत्य २ कहिए, क्योंकि कहा है:-

> या पुंसि देदीप्यमानप्रभगे ह्यारोग्यता जायते,
> गम्भीर भयवर्जित गुणनिधि सतोषजात चित्।
> विख्यात शुभनामजातिमहिमा धैर्यायुदारक्षम,
> नेत्रानंदकरो न भूमिपतिजो हीने कुले जायते॥

अर्थात्-सुन्दर सुरूपवान्, निरोगी, गंभीर, भयरहित, गुणनिधि, संतोषी, शुभ नामवाला, कीर्तिवान् और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला ऐसा पुरुष हीनकुलमें कैसे जन्म ले सकता है? कदापि नहीं ले सकता।

तब श्रीपालजी बोले-"प्रिये! तुम चिंता मत करो और अपना शोक दूर करो। समुद्रके किनारे जो जहाज ठहरे है, उनमें एक रयनमजूषा नामकी सुन्दरी है, सो तुम उससे जाकर मेरा सब वृत्तांत पूछ लो। वह सब जानती है, सो तुमसे कहेगी। वह सुनते ही वह सती शीघ्र ही समुद्र किनारे गई, और रयनमजूषा! रयनमजूषा! करके वहाँ पुकारने लगी। तब रयनमजूषाने सुनकर विचारा-यहाँ परदेशमें कौन मुझसे परिचित है? चलूँ, देखूँ तो सही कौन है? और क्यों बुला रही है? यह सोच वह जहाजके ऊपर आकर देखने लगी, तो साम्हने एक अतिसुकुमार स्त्रीको रुदन करती हुई पाई, जो स्वामी स्वामीका भजन कर रही है,

और जिसका शरीर धूलसे भररहा है। मैले कुचैले कपड़े पहिरे खडी है। उसे देख रयनमजूषा करुणामय स्वरसे बोली—"हे बहिन! तू क्यों रोरही है, और क्यों इतनी अधीर होरही है? तू कौन है? और यहांतक कैसे आई? गुणमालाको कुछ इसके वचनोंसे धैर्य हुआ। वह अपने शोकको रोककर बोली,—"स्वामिनी! मेरे पिताने मुनिराजसे पूछा था कि मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? सो उनने बताया था कि जो पुरुष सागर तिरकर आवे, वही तेरी कन्याका पति होगा। और ऐसा ही हुआ कि यहां कुछ दिन हुए एक पुरुष श्रीपाल नामका महातेजस्वी रूपमें कामदेवके समान धीरवीर महाबली निज बाहुबलसे समुद्र तिरकर आया और मेरे पिता (यहांके राजा)ने उसके साथ मेरा पाणि ग्रहण कर दिया, इस प्रकार बहुत दिन आनन्दसे रहे, परंतु आज दिन बहुतसे भाड राज्यसभामें आये, और अपनी चतुराईसे राजाको प्रसन्नकर पारितोषिक प्राप्त किया, पश्चात् उन्होंने मेरे पतिको देखकर पकड लिया, और "पुत्र २" कहकर चुम्बन करने लगे, बलैया लेने लगे, और राजासे कहने लगे कि यह तो हमारा पुत्र है। तब राजाको बहुत दुःख हुआ, और उन्हें हीनकुली जानकर शूलीकी आज्ञा दे दी है। इसलिये स्वामिनी! तुम इसके विषयमें जो कुछ जानती हो, सो कृपाकर कहो, ताकि मेरे स्वामीकी प्राणरक्षा हो। मुझ अनाथको पतिभिक्षा देकर सनाथ करो।" तब रयनमजूषा बोली—'हे बहिन! तू शोक मत कर। वह पुरुष चरमशरीरी महाबली है। उत्तम राजवंशीय है। मरनेवाला नहीं है। चल, तेरे पिताके पास चलती हूं और वहां सब वृत्तांत कहूंगी।

---

(२५) रयनमंजूषाका श्रीपालको छुडाना।

रयनमंजूषा श्रीपालका न'म सुनते ही हर्षसे रोमाञ्चित हो गई और लम्बे २ पॉव बढ़ाती हुई शीघ्र ही राजसभामें आकर पुकार करके प्रार्थना करने लगी कि, "हे महाराज! प्रजापालक! दीनबंधो! दयासागर! न्यायावतार! कृपाकरके हम दीनोंकी प्रार्थना पर भी कुछ ध्यान दीजिये। राजाने उनकी पुकार सुनकर साम्हने बुलाया, और पूछा—" हे सुंदरियो! तुम क्या कहना चाहती हो! तुमको निःकारण किसने सताया है। शीघ्र कहो। तब वे दोनों हाथ जोडकर बोलीं—" महाराज! हमारे पति श्रीपालको निष्कारण सूली हो रही है सो इसका न्याय होना चाहिये।"

राजाने कहा—" सुंदरियों! वह राज्यवंशका अपराधी है। वह वंशहीन भॉड़ोंका पुत्र हो करके भी यहाँ वंश छिपाकर रहा, और मुझे धोखा दिया है, इसलिये उसे अवश्य ही शूली होगी।"

रयनमंजूषा बोली—" महाराज! यह एक-अंगी न्याय है, एक ओरकी बात मिश्रीसे भी मीठी होती है, और प्रतिवादीके लिये तीक्ष्ण कटारी है, इसलिये पहिले विचार कीजिये, और फिर जो न्याय हो सो कीजिये। हम तो न्याय चाहती हैं। राजाने रयनमंजूषासे कहा—'अच्छा, तुम इस विषयमें कुछ जानती हो तो कहो।' तब रयनमंजूषाने कहा—'हे नरनाथ! यह अंगदेश चंपापुरीके राजा अरिदमनका पुत्र है। और उज्जैनके राजा पहुपालकी रूपवती व गुणवती कन्या मैनासुंदरीका पति है। यह वहाँसे चलकर रास्तेमें बहुत जनोंको वश करता हुआ हंसद्वीप आया, और वहॉके राजा

कनककेतु की पुत्री रयनमंजूषा (मुझ) को परणा। पश्चात् आगे चला, सो जहाजोंके स्वामी धवलसेठकी मुझपर कुदृष्टि हुई, और उसने छलकरके मेरे पतिको समुद्रमें गिरा दिया, तथा मेरा शील भंग करनेका उद्यम किया। सो धर्मके प्रभावसे किसी देवने आकर उपसर्ग दूर किया और सेठको बहुत दण्ड दिया। उस समय देवने मुझसे कहा था कि पुत्री! शीघ्र ही तेरा स्वामी तुझे मिलेगा और वह बड़ा राजा होगा सो महाराज अबतक मेरे प्राण इसी आशापर ही टिक रहे हैं। अब आपके हाथ बात है। सो करुणाकर पतिकी भिक्षा दीजिये। राजा रयनमंजूषासे यह वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने अविचारीपन पर पछताता हुआ तुरंत ही श्रीपालके पास गया और हाथ जोड़कर विनती करने लगा—" हे कुमार! मेरी बहुत भूल हुई। सो मुझ पर क्षमा करो! मैं अधम हूँ, जो विना ही विचारे यह कार्य किया। अब मुझपर दया करके घर पधारो "।

तब श्रीपालने कहा—" महाराज! संसारमें यह कर्म ही जीवोंको अनादि कालसे कभी सुख और कभी दुख दिया करता है। इसमें आपका कुछ दोप नहीं है। मेरे ही पूर्वोपार्जित पाप कर्मोंका अपराध है। जैसा किया वैसा पाया। अच्छा हुआ, जो वे कर्म छूट गये, मेरा इतना ही भार कम हुआ। मुझे तो कुछ भी इसका हर्ष विषाद नहीं है। जो हुआ सो हुआ। गई बातका पछतावा ही क्या? हाँ इतनी बात अवश्य है, कि आप जैसे समीचीन पुरुषोंको सदैव प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक ही करना चाहिये।" कहा है, कि—

किं विद्याधरवादनादनिपुणोद्गारः कृतो धैर्यवान्;
किं योगीश्वरकानने च कथितं ध्यानं ध्रुवं केवलम्।
किं राज्यं सुरनाथतुल्यभवतो भूमण्डले विद्यते;
यच्चित्तं च विवेकहीनमनिशं दुःखं च पुंसोधिकम् ॥

अर्थात्—विद्याधरकी गंधर्वादि विद्याएँ, योगीश्वरोंका वनमें अचल ध्यान और स्वर्ग समान समस्त पृथ्वीका राज्य भी विवेक बिना निष्फल है। राजाने लज्जासे शिर नीचा करलिया और श्रीपालको गजारूढ कर बडे उत्साहसे राजमहालको ले आये। नगरमें घरोंघर मंगल नाद होने और हर्ष मनाया जाने लगा। श्रीपाल जब महलमें आये, तो दोनों स्त्रियोंने प्रेमपूर्वक पतिकी वंदना की, और परस्पर कुशल पूछकर और अपना २ सब वृत्तांत कह तथा सुनकर चित्तको शांत किया और वे आनन्दसे समय बिताने लगे। राजाने सेवकोंको भेजकर धवलसेठको पकड बुलाया। सो राज्यकीय नौकर उसे मारते पीटते तथा बड़ी दुर्दशा करते हुए राजसभा तक लाये। तब राजाने उस समय श्रीपालजीको भी बुलाया और कहा—"देखो, इस दुष्टने आप अपने महोपकारी धर्मात्मा नररत्नको निष्कारण बहुत सताया है इसलिये अब इसका शिरच्छेद करना चाहिये।" यह सुन और सेठकी दुर्दशा देखकर श्रीपालको दुःख हुआ। वे राजासे बोले— 'महाराज! यह मेरा धर्मपिता है। कृपाकर इसे छोड दीजिये। इसने मेरे साथ जो जो अवगुण किये हैं वे मेरे लिये तो गुण स्वरूप हो गये हैं। इनके ही प्रसादसे आपके दर्शन हुए और

पाया। न ये मुझे समुद्रमें गिराते, न मैं यहाँ तक आता और न गुणमालाको व्याहता।

राजाने श्रीपालके कहनेसे सेठ और उसके सब साथियोंको छोड़ दिया तथा आदरपूर्वक पंचामृत भोजन कराकर बहुत सुश्रूषा की। धवलसेठने श्रीपालजीकी यह उदारता दयालुता तथा गंभीरता देखकर लज्जित हो नीचा शिर कर लिया, और श्रीपालकी बहु स्तुति की। तथा मन ही मन पछताने लगा—हाय! मैंने इसको इतना कष्ट दिया, परन्तु इसने मुझपर भलाई ही की। हाय! मुझ पापीको अब कहां ठौर मिलेगा? इस प्रकार पछताकर ज्योंही एक दीर्घ उच्छ्वास ली कि उसका हृदय फट गया, और प्राणपखेरू उड़ गये। सो वह मरकर पापके उदयसे सातवें नर्क गया। यहां श्रीपालको सेठके मरनेका बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सेठानीके पास जाकर बहुत रुदन किया। पश्चात् उसे धैर्य देकर कहने लगा—माताजी! होनी अमिट है। तुम दुःख मत करो। मैं तुम्हारा आज्ञाकारी पुत्र हूँ। जो आज्ञा हो, सो ही करूं। यहां रहो तो सेवा करूँ, और देश व गृह पधारो तो पहुंचा दूं। सब द्रव्य आपहीका है। शंका मत करो। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। तब सेठानी बोली—"हे पुत्र! तुम अत्यन्त दयालु और विवेकी हो। जो होना था सो हुआ। अब आज्ञा दो, तो मैं घर जाऊं। तब श्रीपालने उसकी इच्छा प्रमाण उसको विदा किया, और आप वहां सुखसे दोनों स्त्रियां सहित रहने लगे।

(२६) श्रीपालका चित्ररेखासे व्याह।

एक दिन श्रीपालजी अपनी दोनों स्त्रियों सहित आनन्दमें मग्न हुए बैठे थे, कि दरबानने आकर खबर दी, महाराज! द्वारपर राजदूत आपको याद कर रहा है। आज्ञा हो तो बुलाऊं। श्रीपालजीने उसे आनेकी आज्ञा दी तब वह नौकर भीतर आया और नमस्कारकर विनयपूर्वक बोला—"हे महाराज। यहांसे थोडी दूर धन, कण, कंचनसे परिपूर्ण एक कुडलपुर नामका बहुत बड़ा नगर है। वहांका राजा मकरकेतु अत्यन्त दयालु और प्रजापालक है कि जिसके राज्यमें दीन दुःखी तो मिलते ही नहीं हैं। उस राजाके यहाँ कपूरतिलका नामकी रानीके गर्भसे चित्ररेखा नामकी एक अत्यन्त ही रूपवती शीलवती कन्या उत्पन्न हुई है। सो राजाने एक दिन कन्याको यौवनवती देखकर श्रीमुनिसे पूछा था कि इस कन्याका वर कौन होगा। तब श्रीगुरुने उसका सम्बन्ध आपसे होना बताया है, इसलिये कृपाकर आप वहाँ पधारिये, और अपनी नियोगिनी कन्याको व्याहिये। मैं श्रीमानको लेनेके लिये आया हूं। यह संदेश सुनकर श्रीपालको बड़ा हर्ष हुआ और दूतको बहुतसा पारितोषक देकर विदा किया। पश्चात् आप अपनी दोनों स्त्रियोंसे विदा होकर कुडलपुर गये। दूतने इनको नगर बहार ठहराकर राजाको समाचार दिया। सो राजा गीत, नृत्य, वादित्रों सहित इनकी अगवानीको आया और बड़े आदरसे नगरमें ले गया। पश्चात् इनका कुल गोत्रादि पूछकर अपनी चित्ररेखा नामकी कन्याका व्याह शुभ मुहूर्तमें इनके साथ

परमेष्टीयंत्र, अग्नि व पंच आदिकी साक्षीसे विधिपूर्वक कर दिया, और बहुत पुर पट्टन हाथी घोड़े रथ प्यादे इत्यादि दहेजमें दिये। सब नगरमें खूब आनन्द मनाया गया। इस प्रकार श्रीपालजी चित्ररेखासे ब्याहकर आनन्द सहित वहाँ रहने लगे।

---

(२७) श्रीपालका अनेक राजपुत्रियोंसे ब्याह।

एक दिन श्रीपाल चित्ररेखा सहित मधुर भाषण करते हुए बैठे थे, कि कंचनपुरका राजदूत आया, और श्रीपालसे नमस्कार-कर बोला—"हे स्वामिन्! सुनो! कंचनपुरके राजा वज्रसेन और उनकी रानी कचनमाला हैं। सो उस रानीके गर्भसे सुशील, गंधर्व यशोधर और विवेक ऐसे चार पुत्र बड़े रूपवान् और साहसी हुवे हैं तथा विलासमती आदि नवसौ पुत्रियाँ रूप लावण्यताकर पूर्ण हुई हैं। सो एक दिन जब राजाने निमित्तज्ञानीसे इनका सम्बन्ध पूछा, तब उसने उनका ब्याह आपके साथ होना बताया है। इसलिये कृपाकर शीघ्र ही पधारो"। यह सुन श्रीपाल प्रसन्न होकर श्वसुरकी आज्ञा ले कंचनपुर गये और वहाँ उन नवसौ कन्याओंको ब्याहकर आनन्दसे रहने लगे। वहाँपर कुछ दिन ही हुए थे, कि कुकुमपुरका एक दूत आया और बोला—"महाराज! हमारे यहाँका राजा यशसेन महायशस्वी और पुण्यवान् है। उसके गुणमाला आदि चौरासी स्त्रियां हैं और स्वर्णचित्र आदि पाँच पुत्र तथा शृंगारगौरी आदि सोलहसौ कन्याएँ हैं सो उनमें आठ कन्याएँ मुख्य हैं, जो समस्या कहती हैं, इसलिये जो कोई उनकी समस्या पूर्ति करेगा सो ही उन सबको

व्याहेगा इसलिये आप वहाँ पधारो। यह कार्य कदाचित् आपसे ही हो सकेगा। यह सुन श्रीपाल प्रसन्न हो श्वसुरकी आज्ञा लेकर कुंकुमपुरमें पहुँचे सो वहाँके राजा यशसेनने इनको आदर सहित अगवानी करके लिया, और अच्छे स्थानमें डेरा कराया। सब नगरमें मंगलगान होने लगा। और जब उन राजकन्याओंने जब यह समाचार पाया तो बडे हर्ष सहित उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहिरकर इनसे मिलने आई। ओर इनका अनूपरूप देखकर मोहित हो गई।

श्रीपालने उनको आते देखकर यथायोग्य सन्मान सहित बैठनेकी आज्ञा दी, और कहा—"हे सुन्दरियो! अपनी २ समस्याएँ कहो।"

तब प्रथम ही शृंगारगौरी बोली—"जहँ साहस तहँ सिद्धि" ॥१॥

पूर्ति— अवसर कठिन विलोकके, नहीं राखिये बुद्धि।
कबहुं न साहस छोड़िये, जहँ साहस तहँ सिद्धि ॥१॥

तब दूसरी सुवर्णगौरीने कहा— "गोपे खन्तह सव्व" ॥२॥

पूर्ति— धम्म न विलसो धननि, कृपण है संचय दव्व।
जूवा रायनले वणो, गोपे खन्तह सव्व ॥ २ ॥

तब तीसरी पौलोमीदेवी बोली— "ते पचायण सीह" ॥३॥

पूर्ति— शील विहूना जे त्रि नर, तिनकी देह मलीन।
ते चारित्ता निर्मला, ते पचायण सीह ॥ ३ ॥

तब चौथी सुहागगौरी बोली— "तसुकाचरा सुमीठ" ॥४॥

पूर्ति— रयनागर छोड़ो चवे, दादुर कुवे वइठ।
जिह श्रीफल नहीं चाखिया, तसुकाचरा सुमीट ॥ ४ ॥

तब पाँचवीं सोमकला बोली— "कास पिवाऊँ खीर" ॥५॥

पूर्ति— रावण पिया माधियो, दश मुख एक शरीर।
माई नशय पड़ रही, काम पिवाऊँ खीर ॥ ५ ॥

तब छठवीं शशिरेखा बोली— "सो मैं कहूँ न दीठ" ॥६॥

पूर्ति— सातों सागर हूँ फिरो, जम्बूदीप पइठ।
शान पराई ना करे, सो मैं कहूँ न दीठ ॥ ६ ॥

तब सातवीं संपदादेवी बोली— "काई विठियो तेण" ॥७॥

पूर्ति— कुन्तो जाये पञ्च सुत, पाञ्चो पञ्च सगण।
सधारी सी जाइया, काई विठियो तेण ॥ ७ ॥

तब आठवीं पद्मावती बोली— "सो तमु काय करेय" ॥८॥

पूर्ति— सत्तर जासु च उगणी, पारथी पर णेय।
अगर पास पइठड़ी, सो तमु काय करेय ॥ ८ ॥

इस प्रकार जब आठों समस्याओंकी पूर्ति होचुकी, तब सब कुटुम्बको बड़ा आनन्द हुआ। और तुरंत ही मुहूर्त सुधाकर शुभ घड़ीमें राय यशसेनने अपनी सोलहसौ गुणवती कन्याएं विधिपूर्वक श्रीपालजीको व्याह दीं। श्रीपालजी कुछ दिन तक व्याहके बाद वहाँ ही रहे, और सुखसे समय व्यतीत किया। पश्चात् एक दिन कुछ सोच विचारकर राजाके पास जाकर आज्ञा ली, और सोलहसौ स्त्रियोंकी विदा कराकर वहाँ आये जहाँ नवसौ स्त्रियाँ थीं, और वहाँके राजासे भी घर जानेकी आज्ञा माँगी।

---

* उक्त समस्याएँ हमारी समझमें नहीं आई इसलिये कवि परिमल्कृत पद्य ग्रन्थके अनुसार जैसीकी तैसी ही यहां उद्धृत कर दी हैं।

तब राजने कहा—" हे गुणवीर ! आपके प्रसंगसे मुझे बड़ा आनन्द होता है, इसलिये कृपाकर कुछ दिन और भी इस स्थानको पवित्र करो" । तब श्रीपालने श्वसुरका कहना मानकर कुछ दिन और भी वहाँ निवास किया । पश्चात् कुछ दिनोंके वहाँसे भी सब स्त्रियोंकी विदा कराकर कंचनपुर आये, और वहाँसे चित्ररेखाकी विदा कराई और पुंडरीकपुर आकर कोकन देशकी दो हजार कन्याएँ व्याहीं । फिर मेवाड़ (उदयपुर) की सौ कन्याएँ व्याहीं, फिर तैलंग देशकी एक हजार व्याहीं, पश्चात् कुंकुमद्वीपमें आये, और गुणमाला और रयनमंजूषासे मिलकर वहीपर कुछ समय तक विश्राम किया । सुखमें समय जाते मालूम नहीं पड़ता है, सो बहुतसी रानियों सहित क्रीडा करते हुए सुखसे काल व्यतीत करने लगे ।

---

(२८) श्रीपालका उज्जैन-प्रयाण ।

एक दिन राजा श्रीपाल रात्रिको सुखसे नींद ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और मैनासुंदरीकी सुधमें बेसुध हो गये । वे सोचने लगे—" ओहो ! अब तो बारह वर्षमें थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं । सो यदि मैं अपने कहे हुए समयपर नहीं पहुँचूँगा, तो फिर वह सती स्त्री नहीं मिलेगी, इसलिये अब शीघ्र ही वहां चलना चाहिये, क्योंकि इतना जो ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हुआ है, यह सब उसीका प्रभाव है । हाय मैं तो यहाँ सुख भोगूं और वह वहाँपर मेरे विरहसे संतप्त रहे ! यह उचित नहीं है । इसी

विचारमें रात्रि पूरी होगई। प्रातःकाल होते ही नित्यक्रियासे निवृत्त होकर वे राजाके पास गये और सब वृत्तांत जैसाका तैसा कहकर घर जानेकी आज्ञा माँगी। तब राजा सोचने लगे कि जानेकी आज्ञा देते हुए तो मेरा जी दुखता है; परंतु हठकर रखनेसे इनका जी दुखेगा, इसलिये रोकना व्यर्थ है, ऐसा विचारकर अपनी पुत्री तथा श्रीपालकी अन्य समस्त स्त्रियोंको बहुतसे वस्त्राभूषण पहिराकर उन्हें इस प्रकार हित शिक्षा दी कि—

" हे पुत्रियो! यह पुरुष बड़ा तेजस्वी वीर कोटीभट्ट है। तुम्हारे पूर्व पुण्यसे ही ऐसा पति मिला है। सो तुम मन वचन कायसे इनकी सेवा करना। सासु आदि गुरु जनोंकी आज्ञा पालन करना। परस्पर प्रीतिमे रहना। छोटों और दीन दुखियोंपर सदा करुणाभाव रखना! कुगुरु, कुदेव और कुधर्मका स्वप्नमें भी आराधन न करना। जिनदेव, जिनगुरु और जिनधर्मको कभी मत भूलना। दोनों कुलकी लाज रखना।" इत्यादि शिक्षा देकर विदा किया। वे चलते चलते सोरठ देशमें आये, और वहाँके राजाकी पाँचसौ कन्याएँ व्याहीं! वहाँसे चलकर महाराष्ट्र देशमें आये और वहाँके राजाकी पाँचसौ कन्याएँ व्याहीं। फिर गुजरात देशमें आये, और वहाँ चारसौ कन्याएँ व्याहीं। फिर वैराट देशमें आकर दोसौ कन्याएँ व्याहीं।

इस प्रकार श्रीपालजी बहुतसी रानियों और बड़ी सैन्या सहित उज्जैन उद्यानमें आये। सो इनका कटक नगरके चारों ओर ठहरा। वहाँ घोड़ोंकी हींस, हाथियोंकी चिंघाड़, बैलोंकी

डकार, ऊँटोंकी बलबलाहट, रथोंकी गड़गड़ाट, प्यादोंकी खटखटाक, बाजोंकी भनभनाट और भेरीका घोरनाद आदिसे बड़ी घमसान होने लगी। जलचर भयके मारे जलमें छिप रहे, और वनचर स्थान छोड़ २ कर भाग गये। नभचर आकाशमें स्थानभ्रष्ट हुए इधर उधर शब्द करते डोलने लगे। नगरमें भी बड़ी हलचल मच गई। कायर पुरुषोंके हृदय कॉपने लगे, वे सोचने लगे कि अवसर पाकर चुपकेसे अपन निकल चलेंगे, ऐसी नामवरीमें क्या रखा है, जो प्राण जायँ। कहीं जंगलमें छिपछिपाकर दिन बिता देंगे। कृपण पुरुष धनको बॉध बॉध जमीनमें गाडने लगे। चोर लुटेरे लूटका अवसर देखने लगे। विषयी विरहके दुःखका अनुभव करने लगे। शूरवीर अपने हथियार निकाल २ मॉंजने लगे। वे सोचने लगे, हमारे आज राज्यके नमक खानेका बदला देनेका दिन आ पहुँचा है। विद्वज्जन संसारके विषयकषायोंसे विरक्त हो द्वादशानुप्रेक्षाका चिंतवन करने लगे। वे सोचने लगे, उपसर्ग दूर हो तो संयम लें और सदैवके लिये इस जंजालसे छूटें। बहुतसे लोग सचिन्त होकर राजाके पास दौड़े और पुकारने लगे "हे महाराज! न जाने कौन राजा अपने नगरपर चढ़ आया है, सो रक्षा करो। राजा भी बड़े विचारमें पड गये, और मंत्रियोंको बुलाकर सलाहें करने लगे। मन्त्री भी अपनी २ राय बताने लगे। इसी प्रकार सोचते २ संध्या हो गई, इसलिये राजा भी सेनाको तैयार रहनेकी आज्ञा देकर आप अंतःपुरको चले गये।

(२९) श्रीपालका कुटुम्ब-मिलाप।

जब रात्रि हो गई और सब लोग सो गये, तब श्रीपालजीने सोचा कि मैंने बारह वर्षका बाधा किया था, सो आज ही अष्टमीका दिन है। यदि मैं आज ही मैनासुंदरीसे नहीं मिलता हूं तो वह भोर होते ही दीक्षा ले लेगी और फिर निकट आकर भी वियोगका दुःख सहना होगा। इसी विचारमें उसे क्षण २ भारी मालूम होने लगा। निदान वह महाबली पिछली रात्रिको अकेला ही उठ चला। सो शीघ्र ही माता कुंदप्रभाके महलके पास पहुँचा और द्वारपर जाकर खडा हो गया, तो क्या सुनता है कि प्राणप्यारी मैनासुंदरी अपनी सासके समीप खड़ी २ कह रही है—"माताजी! आपके पुत्र तो अब तक नहीं आये, और बारह वर्ष पूर्ण हो गये। इसलिये मैं अब प्रातःकाल ही श्रीजिन दीक्षा लूंगी। मुझे आज्ञा दीजिये। इतने दिन मेरे आशा ही आशामें व्यर्थ गये। अब मुझसे नहीं रहा जाता है और उनका वचन भी पूर्ण हो गया है। कहा है:—

" प्रसरी या संसारमें आशापाश अपार।
बँधे प्राणि छूटे नहीं, दुःख पावें अधिकार॥ "

सो उनकी अब कुछ आशा नहीं दीखती है क्योंकि परदेशकी बात है। न जाने स्वामी राह भूल गये, या किसी स्त्रीके वश होगये, या मेरी याद भूल गये अथवा और ही कुछ कारण हुआ, क्योंकि अब तक कुछ भी संदेशा नहीं मिला है, इसीसे और भी चित्त व्याकुल होरहा है। माताजी! अब तक आपकी सेवा की,

सो उसमें जो भूल हुई हो सो क्षमा करो, और दयाकर आज्ञा दो। अब विलंब करनेसे मेरी आयुका अमूल्य समय जाता है।

तब कुंदप्रभा बोली—"हे पुत्री! दोचार दिन तक और भी धैर्य रक्खो। यदि इतनेमें वह न आवेगा, तो मैं और तू दोनों ही साथ २ दीक्षा ले लेवेंगे। मुझे आशा है कि वह धीर वीर अवश्य ही इतनेमें आवेगा। तब सुंदरी बोली—"माताजी! यह तो सत्य है कि स्वामी अपने वचनके पक्के हैं, परन्तु कर्म बड़ा बलवान् है। क्या जाने स्वामीको कौन विपत्ति या पराधीनता आ गई है? इससे नहीं आये। विना संदेशेके मैं कैसे निश्चय कर सकती हूँ कि स्वामी शीघ्र ही इतने दिनोंमें आवेंगे।"

तब माताने कहा—"हे पुत्री! तू इतनी अधीर मत हो। निश्चय ही तेरा पति दो चार दिनमें आवेगा। सो यदि वह आया और सूना घर देखेगा, तो बहुत दुःखी होगा, इसलिये जैसे तुम इतने दिन रही हो वैसे और भी दोचार दिन सही। फिर हम तुम दोनों ही दीक्षा लेगें।" तब मैनासुंदरी बोली—माताजी! अब मोहवश समय विताना व्यर्थ है। आप भी मोहको छोड़कर चलो, और प्रभुके चरणकी सेवा करो। अब रहना भी उचित नहीं है। जो रहूँगी तो बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। माताजी! आप तो उनकी जननी हो। सो पुत्रकी विभूति देखोगी और मेरे जैसी तो उनके अनेक दासियाँ होंगी। सो अब क्यों व्यर्थ ही अपमान सहनेके लिये रहूँ और इसपर भी अभी उनके आनेकी कुछ खबर नहीं है तब क्यों अपना समय विताया जाय?" इस प्रकार सासु बहूकी वातें हो रही थीं, सो श्रीपालजी चुपकेसे

सुनते रहे, परंतु जब उनसे न रहा गया, तो वे तुरंत ही किवाड़ खुलवाकर भीतर गये और माताको प्रणाम किया। माताने हर्षित हो आशीर्वाद दिया—"हे पुत्र! तुम चिरंजीवी होकर सुखपूर्वक प्राप्त की हुई लक्ष्मीको भोगो, और तुम्हारा यश सर्वत्र फैले।"

पश्चात् श्रीपालकी दृष्टि मैनासुंदरी पर पड़ी, तो देखा कि वह कोमलाङ्गी अत्यन्त क्षीणशरीर होरही है। तब उसके महलको गये। सो वहाँ पहुँचते ही मैनासुंदरी पाँवपर गिर पड़ी। कुछ कालतक सुखमूर्छित होनेसे चुप रही फिर नम्र शब्दोंमें अपने चित्तके हर्षको प्रकाशित करने लगी—"अहा! आज मेरा धन्य-भाग्य है, जो मैं स्वामीका दर्शनकर रही हूँ। हे प्राणवल्लभ! इस दासीपर आपकी असीम कृपा है, जो दर्शन दिये, धन्य हो! आप अपने वचनके निर्वाह करनेवाले हैं। मैं आपकी बड़ाई करनेको असमर्थ हूँ।" तब कोटीभट्टने प्रियाको कंठसे लगाकर धैर्य दिया। तत्पश्चात् परस्पर कुशल पूछने लगे। फिर श्रीपालजी माता और मैनासुंदरीको अपने कटकमें ले गये और वहाँ जाकर माताको सिंहासनपर बैठाकर निकट ही मैनासुंदरीको माताके सिंहासनसे नीचे स्थान दिया। पश्चात् रयनमंजूषा आदि समस्त स्त्रियोंको बुलाकर कहा—"यह सिंहासनपर विराजमान तुम्हारी पूज्य सासु है और उनके नीचे मेरी प्रथम स्त्री मैनासुंदरी है। इसीके प्रसादसे तुम सब आठ हजार रानियाँ और ये सब सम्पत्तियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं।

तब उन स्त्रियोंने स्वामीके मुखसे यह सम्बन्ध जानकर यथाक्रम सासु कुंदप्रभा और मैनासुंदरीको यथायोग्य नमस्कार करके

बहुत विनय सत्कार किया। पश्चात् श्रीपालजीने माता और मैना-सुंदरीको अपना सब कटक दिखाया। माताकी आज्ञा लेकर मैना-सुंदरीको आठ हजार रानियोंकी मुख्य पट्टरानीका पद प्रदान किया, और बोले-"हे सुंदरि! यह सब कुछ जो दीखता है तेरे ही प्रसा-दसे है। मैं तो वही विदेशी पुरुष हूं, जो विपत्तिका मारा यहाँ आया था।" तब मैनासुंदरीने विनययुक्त हो नीचा मस्तक करलिया और बोली-"हे स्वामिन! मैं आपकी चरणरजके समान हूँ। मैंने अपने पूर्व पुण्यके योगसे आप जैसा भर्तार पाया है। आप तो कोटीभट्ट, साहसी, धीरवीर, पराक्रमी और महाबली हो। लक्ष्मी तो आपकी दासी है। आपकी निर्मल कीर्ति दशों दिशाओंमें व्याप्त हो रही है।" इस तरह मैनासुंदरीका पट्टाभिषेक हो गया, और वे रयनमंजूषा, गुणमाला, चित्ररेखादि समस्त आठ हजार रानियाँ मैनासुंदरीकी सेवा करने लगीं। पश्चात् एक समय मैनासुंदरीको अपने पिताके पूर्वकृत्यका स्मरण हो आया सो वह बदला लेनेके विचारसे पतिसे बोली-"हे स्वामिन! आप तो दिगंतविजयी हो, इसलिये मेरी इच्छा है कि मेरे पिताका युद्धमे मान भंग करना चाहिये और जब वे कांधेपर कुल्हाड़ी धर, कंबल ओढ और लँगोटी लगाकर आवें, तभी छोड़ना चाहिये।"

यह सुनकर कोटीभट्ट चुप होगये और कुछ सोच विचारकर बोले-"हे कान्ते! तुम्हारे पिताने मेरा बड़ा उपकार किया है अर्थात् कोढ़ीको कन्या दी है। जिस समय मैं सर्व स्वजनोंसे वियोगी हुआ यत्र तत्र फिर रहा था, तब उसने मेरी सहायता की थी, सो ऐसे उपकारीपर अपकार करना कृतघ्नता और घोर पाप है।

अतः मुझसे यह कार्य होना कठिन है।" तब मेनासुंदरी बोली—"हे स्वामिन्! मैं कुछ द्वेषरूपसे नहीं कहती हूं, परंतु यदि कुछ चमत्कार दिखाओगे तो उनकी जिनधर्मपर दृढ श्रद्धा हो जावेगी, यही अभिप्राय है।"

---

(३०) श्रीपालका पहुपालसे मिलाप।

श्रीपाल प्रियाके ऐसे वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और तुरंत ही एक दूत बुलाकर उसे सब भेद समझाया, और राजा पहुपालके पास भेजा। सो दूत स्वामीकी आज्ञानुसार शीघ्र ही राजाकी ड्योढीपर जा पहुँचा. और दरवानके हाथ अपना संदेशा भेजा। राजाने उसे आनेकी आज्ञा दी, सो उस दूतने सन्मुख जाकर राजा पहुपालको यथायोग्य नमस्कार किया। राजाने कुशल पूछी, तब दूत बोला—" महाराज! एक अत्यन्त बलवान् पुरुष कोटीभट्ट अनेक देशोंको विजय कर और वहाँके राजाओंको वश करके आज यहाँ आ पहुँचा है, उसकी सेन्या नगरके चारों ओर पड रही है। उसके साम्हने किसीका गर्व नहीं रहा है। सो उसने आपको भी आज्ञा की है कि लँगोटी लगा, कम्बल ओढ, माथेपर लकड़ीका भार और कांधे कुल्हाडी रखकर मिलो तो कुशल है, अन्यथा क्षणभरमें विध्वंस कर दूँगा। इसलिये हे राजन्! आप जो कुशल चाहते हो, तो इस प्रकारसे जाकर उससे मिलो, नहीं तो आप जानो। पानीमें रहकर मगरसे वैर करके काम नहीं चलेगा।"

राजा पहुपालको दूतके वचनोंसे क्रोध आया, और वे बोले-" इस दुष्टका मस्तक उतार लो, जो इस प्रकार अविनय कर रहा है। " तब नौकरोंने आकर दूतको तुरंत ही पकड़ लिया और राजाकी आज्ञानुसार दण्ड देना चाहा, परंतु मंत्रियोंने कहा-" महाराज ! दूतको मारना अनुचित है, क्योंकि यह बेचारा कुछ अपनी ओरसे तो कहता ही नहीं है। इसके स्वामीने जैसा कहा होगा, वैसा कह रहा है, इसमें इसका कुछ अपराध नहीं है, इसलिये इसे छुड़वा देना ही योग्य है। और हे महाराज ! यह राजा बहुत ही प्रबल मालूम पड़ता है, इसलिये युद्ध करनेमें कुशलता नहीं दीखती है, किन्तु किसी प्रकार उससे मिल लेना ही उचित है।" तब राजाने मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार दूतको छुडवाकर कहा कि-तुम अपने स्वामीसे कह दो कि मैं आपकी आज्ञा माननेको तत्पर हूँ। यह सुनकर दूत हर्षित होकर पीछे श्रीपालके पास गया और यथावत् वार्ता कह दी कि राजा पहुपाल आपसे आपकी आज्ञानुसार मिलनेको तैयार है।

तब श्रीपालने मैनासुंदरीसे कहा-" प्रिये ! राजा तुम्हारे कहे अनुसार मिलनेको तैयार है। अब उसे अभयदान देना ही योग्य है।" मैनासुंदरीने कहा-" आपकी इच्छा हो सो कीजिये। वही मुझे स्वीकार है।" तब श्रीपालने पुन दूतको बुलाकर राजा पहुपालके पास यह संदेशा भेजा कि आप चिंता न करें और अपने दलबल सहित जैसा राजाओंका व्यवहार है उसी प्रकारसे आकर मिलें। सो दूतने जाकर राजा पहुपालको यह संदेशा सुनाया। सुनकर राजाको बहुत हर्ष हुआ और दूतको बहुतसा पारितोषक

देकर विदा किया। तथा आप डंका, निशान, हय, गय, रथ वाहनादि सहित बड़ी धूमधामसे मिलनेको चला। जब पास पहुँचा तब राजा पहुपाल हाथीसे उतरकर पांव प्यादे होगया सो श्रीपाल भी श्वसुरको पाँव प्यादे देख आप भी पाँव प्यादे चलकर सन्मुख गये और दोनों परस्पर कंठसे कंठ लगाकर मिले। दोनोंको बहुत आनन्द हुआ। राजा पहुपालके मनमें एकदम कुछ अनोखे भाव उत्पन्न हुए। इसलिये वह श्रीपालके मुँहकी ओर देखकर बोले:—

"हे राजेश्वर! आपको देखकर मुझे बहुत मोह उत्पन्न होता है, परंतु मैं अबतक आपको पहिचान नहीं सका हूँ कि आप कौन हैं?" तब श्रीपाल हँसकर बोले—"महाराज! मैं आपका लघु जँवाई श्रीपाल हूँ, जो मैनासुंदरीसे बारह वर्षका वादा करके विदेश गया था। सो आज पीछे आया हूँ।" यह सुनकर राजाने फिरसे श्रीपालजीको गलेसे लगा लिया, और परस्पर कुशल क्षेम पूछकर हर्षित हुए। नगरमें आनन्द-भेरी बजने लगी। फिर राजा अपनी पुत्रीके पास गया, और क्षमा माँगने लगा—"हे पुत्री! तू क्षमा कर। मैंने तेरा बड़ा अपराध किया है। तू सच्ची धर्म धुरंधर शीलवती सती है। तेरी बड़ाई कहाँ तक करूँ?" मैनासुंदरीने नम्र होकर पिताको सिर झुकाया। पश्चात् राजा रय-नमंजूषादि सब रानियोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ, और सर्व संघको लिवाकर नगरमें लौट आया। नगरमें शोभा कराई गई। घर घर मंगल बधाये होने लगे। राजाने श्रीपालका अभिषेक किया, और सब रानियों समेत वस्त्राभूषण पहिराये। इस प्रकार श्वसुर जँवाई मिलकर सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे।

---

(३१) श्रीपालका चंपापुर जाना ।

इस प्रकार सुखपूर्वक रहते हुए श्रीपालको बहुत समय बीत गया। एक दिन बैठे बैठे उनके मनमें वही विचार उत्पन्न हो गया, कि जिस कारण हम विदेश निकले थे वह अभी पूर्ण नहीं हो पाया है। अर्थात् पिताके कुलकी प्रख्याति तो नहीं हुई और मैं वही राज-जँवाई कहाया जा रहा हूं इसलिये अब अपने देशमें चलकर अपना राज्य करना चाहिये। यह सोचकर श्रीपालजी राजा पहुपालके निकट गये और देश जानेकी आज्ञा मांगी। राजाने उनकी इच्छा प्रमाण विलखित वदन होकर आज्ञा दे दी। सो श्रीपाल मैनासुंदरी आदि आठ हजार रानियों और बहुत सैन्या सहित उज्जैनसे विदा हुए। राजा पहुपाल आदि बहुतसे राजा पहुंचानेको आये और सबने शक्ति प्रमाण द्रव्य भेंट की।

बहुत भूप सग्रह भये, दियो भेंट बहु माल।
कोलाहल होवत भयो; चलो राव श्रीपाल ॥१॥
श्रीपाल चलो मेरू हलो, जागो वासक शेष।
गज घण्टा गाजहिं प्रबल, भाजहिं अरि तज देश ॥२॥
बाजे निशान अरु सैन सब, गिनथी कासे जाय।
चलमले दश दिगपाल हो, कपे थर हर राय ॥ ३ ॥
धूल उड़ी आकाशमें, लोप भयो है भान।
खलबल हुई भुवि लोकमें, शब्द सुनिय नहिं कान ॥४॥
अधकार प्रगटयो तहाँ, जुरी सेन गभीर।
और कहा दशहू दिशा, खूट गयो तृण नीर ॥ ५ ॥
लाघत गिरि खाई नदी, वन थल नगर अपार।
वश कर बहु नृप आइयो, चपापुरी मँझार ॥ ६ ॥

श्रीपालजी इस प्रकार विभूति सहित स्वदेश चंपापुरके उद्यानमें आये, और नगरके चहुँ ओर डेरा डलवा दिये। सो नगरनिवासी इस अपार सैन्याको देखकर हक्का-बक्का भूल गये, और सोचने लगे कि यह अचानक ही हम लोगोंका काल कहाँसे उपस्थित हुआ है। पश्चात् श्रीपाल सोचने लगे, कि इसी समय नगरमें चलना चाहिये। ठीक है—बहुत दिनोंसे बिछुरी हुई प्यारी प्रजाको देखनेके लिये ऐसा कौन निर्दयी राजा होगा, जो अधीर न हो जाय? सभी हो जाते है। तब मंत्रियोंने कहा—"स्वामिन्! एकायक नगरमें जाना ठीक नहीं है। पहिले सदेशा भेजिये, और यदि इसपर वीरदमन सरल मनसे ही आपको आकर मिलें तो ठीक है। फिर झगड़ा करनेकी आवश्यकता ही क्या है और यदि कुछ शल्य होगी तो भी प्रगट हो जायगी।" श्रीपालको यह मंत्र अच्छा लगा और तुरत दूतको बुलाकर सब बात समझाकर राय वीरदमनके पास भेजा। वह दूत शीघ्र ही राजा वीरदमनकी सभामें पहुँचा, और नमस्कार कर कहने लगा—

"हे महाराज! राजा श्रीपाल बहुत परिग्रह और विभव सहित आ पहुँचे हैं। सो आप चलकर शीघ्र ही उनसे मिलो, और उनका राज्य पीछा उनको सौंप दो"। यह सुनकर वीरदमन प्रसन्न हुआ, और श्रीपालकी कुशल पूछने लगा। तब दूतने सब वृत्तांत—घरसे निकलने, विदेश जाने, आठ हजार रानियोंके साथ व्याह करने और बहुतसे राजाओंके वश करने आदिका कुल समाचार कह सुनाया। तब वीरदमन बोला—"रे दूत! तू जानता है, कि क्या राज्य और स्त्री भी कोई माँगनेसे देता है? ये चीजें

तो बाहुबलसे ही प्राप्त होती हैं। जिस राज्यके लिये पुत्र पिताको, भाई भाईको, मित्र मित्रको मार डालते हैं, क्या वह राज्य विना रणमें शस्त्रप्रहार किये किसी प्रकार मिल सकता है ? क्या तूने नहीं सुना कि भरत चक्रवर्तीने राजगद्दी के लिये अपने भाई बाहुबलपर चक्र चलाया था ? विभीषणने रावणको मरवाया था, कौरवों और पांडवोंमें महाभारत हुआ था ? सो राज्य क्या मैं यों ही दे सकता हूं ? नहीं, कदापि नहीं। यदि श्रीपालमें बल हो तो मैदानमें आकर ले लेवे।"

यह सुनकर वह दूत फिर विनय सहित बोला—"हे राजन् ! ऐसी हठ करनेसे कुछ लाभ नहीं है। श्रीपाल बडा पराक्रमी कोटीभट्ट और बहुत राजाओंका महामंडलेश्वर राजा है। उसके साथ बड़े२ राजा हैं, अपार दलबल है। आपको उससे मिलनेहीमें कुशल है। यदि आप उससे मिलेंगे तो वह न्यायी है, आपको पिताके तुल्य ही मानेगा। अन्यथा आप बड़ी हानि उठायँगे।" दूतके ऐसे वचनोंसे वीरदमनको क्रोध आ गया ! वे लाल २ आंखें दिखाकर बोले—"रे अधम ! तुझे लज्जा नहीं। मेरे साम्हने ही ढिठाई करता जा रहा है। तू अभी मेरे बलको नहीं जानता है। मेरे साम्हने इन्द्र, चन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्र आदि की भी कुछ सामर्थ्य नहीं है। फिर श्रीपाल तो मेरे आगे लड़का ही है। उससे युद्ध ही क्या करना है ! बातकी बातमें उसका मान हरण करूंगा।"

तब दूत फिर बोला—"हे राजन् ! आप अपने मनका यह मिथ्याभिमान छोड़ दो। श्रीपाल राजाओंका राजा है। महामंडल-

पर जितने बड़े २ राजा हैं, कि जिनके यहाँ आपके सरीखे दासत्व करते हैं उन सबने उनकी सेवा स्वीकार कर ली है। फिर तुम्हारी गिनती ही क्या है? वनमें बहुत जानवर होते हैं, परन्तु एक हाथीकी चिंघाड़से वे कोई नहीं ठहर सकते, और हजारों हाथी एक ही सिंहकी गर्जनासे दिशा विदिशाओंको भाग जाते हैं। हजारों साँपोंके लिये एक मोर ही बस है। इसी प्रकार तुम जैसे करोड़ों राजा आ जायँ तो भी उस भुजबलीके एक ही प्रहार मात्रमें निगर्व होकर शस्त्र छोड़ देंगे अर्थात् वह एक ही बारमें सबका संहार करनेको समर्थ है।"

तब क्रोधकर वीरदमन बोले—"अरे धीठ! तू मेरे साम्हनेसे हट जा। मैं तुझे क्या मारूँ? क्योंकि राजनीतिका यह धर्म नहीं है जो दूतको मारा जाय। तुझे मारनेसे मेरी शोभा नहीं है। तू मेरे ही साम्हने मेरी निंदा और श्रीपालकी बड़ाई करता है। क्या मैं उसे नहीं जानता हूँ? वह मेरा ही लड़का है। मैंने उसे गोदमें खिलाया है और कोढ़ी होकर वह जब घरसे निकला था, तब रोता हुआ गया था। सो अब कहाँका बलवान् हो गया? और उसके पास इतनी सैन्या कहाँसे आ गई, जो मुझसे लड़नेका साहस करता है? जा जा, देख लिया मैंने उसका बल! क्यों अपनी हँसी कराता है?" तब वह दूत फिर बोला—"देखो राजाजी, अभिमान मत करो। भरतने अभिमान किया सो चक्रवर्ती होकर भी बाहुबलीसे अपमानित हुए। रावणने मान किया, सो लक्ष्मणसे मारा गया। दुर्योधनका मान भीमने मर्दन किया। जरासिंधुको श्रीकृष्णने मारा, इत्यादि बड़े २ पुरुषोंका भी मान

नहीं रहा, तो तुम्हारी गिन्ती ही क्या है? इसलिये मैं फिर कहता हूँ कि जो अपना भला चाहो, तो श्रीपालकी सेवा करो। क्योंकि यदि वह एक ही वीरको आज्ञा कर देगा तो वही वीर तुमको क्षणभरमें संहार कर डालेगा।"

तब दूतके ऐसे वचन सुनकर वीरदमन बोले—"इस दुष्टकी खाल निकलवाकर भूसा भर दो, अर्थात् मार डालो। यह मेरे ही साम्हने बार २ मेरी निंदा करता है, और मनमें तनक भी शंका नहीं करता।" तब मंत्री बोले—"महाराज! दूतोंपर क्रोध नहीं करना चाहिये। इनका स्वभाव ही यह है। ये अपने स्वामीके प्रेरे निडर होकर कठिन शब्द बोलते हैं। इनको कोई नहीं मारता है। इनका साहस अपार होता है कि परचक्रमें जाकर भी निःशंक हो स्वामीके कार्यमें दत्तचित्त होते है। ये लोग अपने स्वामीके लिये अपना तन मन न्योछावर कर देते हैं। ये लोग स्वामीके कार्यके आगे राजविभवको भी तुच्छ गिनते हैं। ये लोग बड़े शूरवीर होते हैं, कि दूसरेकी सभामें जहाँ इनका कोई सहायक नहीं है, वहाँपर भी अपने स्वामीकी कीर्ति और परकी निंदा करते हैं। इनके मनमें सदा अपने स्वामीका हित ही विद्यमान रहता है। इसलिये महाराज! इस दूतको ऐसा इनाम देना चाहिये कि जिसका बखान अपने स्वामी तक करता जाय, क्योंकि जिनके कुल परंपरासे राज्य चला आरहा है, वे दूतोंको बहुत सुख देते हैं, इसलिये आप भी यशके भागी होओ। यदि दूतको आप मारोगे तो अपवाद होगा, क्योंकि इन्हें कोई कभी नहीं मारता, ये चाहे जो क्यों न कहें। ये बेचारे स्वामीके बलसे गर्जते हैं।" तब वीरदमनने दूतका सन्मान

कर उसे बहुतसा द्रव्य दिया और कहा कि तुम श्रीपालसे जाकर कह दो कि युद्धमें जिसकी विजय होगी, वही राज्य करेगा। तब दूत नमस्कारकर वहाँसे गया और जाकर श्रीपालसे सब वृत्तांत कह दिया कि वीरदमनने कहा कि "संग्राममें आकर जुटो और बल हो तो राज्य लो।"

---

(३२) श्रीपालका वीरदमनसे युद्ध।

श्रीपालजीको दूतसे यह समाचार सुनते ही क्रोध उत्पन्न हो उठा। वे होठ डँसते हुए बोले-" क्या वीरदमनको इतना साहस हो गया है, जो मेरे राज्यपर-मेरे द्वारा दिये हुए राज्यपर, इतना गर्जता है और मुझे मेरा ही राज्य पीछा देनेके बदले युद्ध करना चाहता है ? अच्छा, ठीक है, अभी मैं इसके मानको मर्दन-कर अपना राज्य छुडा लूँगा। " यह सोचकर उसने तुरत ही सेनापतिको आज्ञा दी कि सैन्या तैयार हो। यहाँ आज्ञाकी देरी थी कि सैन्या तैयार हो गई। सब बड़े २ सामन्त बख्तर पहिर हथियार बाँध वाहनोंपर चढ़ चले। हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ इत्यादिके समूह दिखाई देने लगे। शूरोंके चहरे सूर्यके समान चमकने लगे। घोड़ोंकी हींस, हाथियोंकी चिंघाड, झुलोंकी झनकार, रथोंकी गड़गड़ाटसे आकाश गूँजने लगा। धूल उडकर बादलोंकी शंका उत्पन्न करने लगी। बाजोंके मारे मेघगर्जना भी सुनाई नहीं देती थी। इस तरह चतुरंग दल सजकर तैयार हुए, और नगर बाहर रंगभूमिमें आकर जम गये। एक ओर श्रीपालकी सैन्या और

दूसरी ओर चाचा वीरदमनकी सैन्या लग रही थी। दोनों परस्पर दाव घात विचारते थे। दोनों ओर बहुत दूर २ तक सिवाय मनुष्यों, घोड़ा, हाथी, रथ आदिके कुछ नहीं दिखाई देता था। शूरवीर रणधीर पुरुष अपने २ कुटुम्बी तथा स्त्रियोंसे क्षमा मांगकर और उन्हें धैर्य दे देकर चले जा रहे थे। उनकी स्त्रियाँ भी उनसे कहती थीं—"हे स्वामिन्! यद्यपि जी नहीं चाहता है कि आपको छोड़ें परन्तु नीति और धर्म कहता है कि नहीं, इससमय रोकना अपशुकुन और पाप है। इससे स्वामीद्रोह समझा जाता है। क्योंसे जिसका नमक खा रहे हैं, आन समय आनेपर अवश्य ही साथ देना चाहिये। संसारमें सब कुछ अनित्य हैं, परंतु वीर पुरुषोंका नाम पृथ्वीपर अमर रहता है। आप जओ, और तन मनसे स्वामीका साथ दो। घरकी चिंता न करना। हम लोगोंका कर्म हमारे साथ है। आप कृतकार्य होनेकी चेष्टा करना। युद्धमें हारकर, पीठ दिखाकर व पीठपर घाव खाकर, पीछे घर मत आना। पीठ दीखाकर मुझे मुँह न दिखाना। कायरकी स्त्री कहलानेके बदले मुझे विधवा कहलाना अच्छा है। शूरवीरोंकी स्त्रियां विधवा होने अर्थात युद्धमें उनका पति मरजानेपर भी, वे विधवा नहीं होती हैं, क्योंकि उनके पतियोंका नाम सदैव जीता है। जाओ और जय प्राप्त करो। अपने घरानेमें स्यानोंने भी ऐसे ही नाम कमाया है। शरीर, स्त्री, पुत्रादि कोई काम नहीं देने। संसारमें कायरका जीना मरनेसे भी खराब है, क्योंकि निदान एक दिन तो मरना ही है। क्योंकि यह विनाशीक शरीर कोटि यत्न करनेपर भी स्थिर नहीं रहेगा। बदनाम होकर बहुत जीनेसे नेकनामीके साथ

शीघ्र ही मरजानेमें हानि नहीं है। अपघात नहीं करना चाहिये, और जीतेजी कायर भी नहीं होना चाहिये। आज हर्ष है कि आप युद्धमें जा रहे हैं। आप कृतकार्य होंगे और मैं भी अपने आपको वीर पुरुषकी पत्नी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त करूँगी।"

शूरोंकी शूर स्त्रियाँ इस तरह सिखावन देती थीं जब कि कायरोंकी कायर स्त्रियाँ कहती थीं—"स्वामिन्! देखो, मैं कहती थी, इस प्रकारकी नौकरी मत करो। यह मौतकी निशानी है। न मालूम कब अचानक आ बीतेगी। मेरा कहा न माना, उसीका यह फल है! तुम तो चले, अब मैं क्या करूँगी? बाल बच्चोंकी रक्षा कैसे होगी? मेरी यह तरुण अवस्था कैसे कटेगी? देखो, अभी कुछ नहीं गया है। चलो, मौका पाकर भाग चलें। कहीं जंगलमें रहकर दिन बितालेंगे। यह राज्य न सही तो न सही। व्यर्थ क्यों मरते हो, और हम लोगोंकी हत्या शिर लेते हो। मैं न जाने दूँगी। फिर तुमको कसम है, जो जाओ। मैं तुम्हारे जाते ही मर जाऊँगी। फिर तुम लौटे भी तो किससे मिलोगे? कहाँका राजा, कहाँकी प्रजा, अपना जी सुखी तो जहान सुखी है।" इस प्रकार स्त्रियाँ जहाँ तहाँ अपने पतियोंको समझाने लगीं। यह सुनकर कायरोंके दिल धड़कने लगे और शूरवीरोंके दिल फूलने लगे, इत्यादि। इधर दोनों ओरसे रणभेरी बजा दी गई। रणके बाजे भी बजने लगे, जिसको सुनकर शूरवीर पतंगके समान उछल २ कर प्राण समर्पण करने लगे। हाथीवाले हाथीवालोंसे, घोड़ेवाले घोड़ेवालोंसे, रथ रथसे, प्यादे प्यादोंसे इस प्रकार दोनों दल परस्पर भूखे सिंहके समान टूट पड़े।

तलवारोंकी खनखनाहट और चमकसे विजली शर्माती थी। मेघोंको शर्मानेके लिये तोपोंके गोले गडगड़ाते थे। वीरोंके शिर कट जानेपर भी कुछ समय तक रुण्ड मार २ करता था। लोहूकी नदी बहने लगी। जहाँ तहाँ रुण्ड मुंड दिखाई देने लगे। देव और विद्याधर आकाशसे युद्धको देखकर आश्चर्यवंत हो गये। वीरोंको जोश बढ़ने लगा और कायरोंके छक्के छूटने लगे।

इस तरह दोनों ओरसे घमसान राड़ मच गई, परंतु दोनों-मेंसे कोई भी पीछे नहीं हटता था। जब दोनों ओरके मंत्रियोंने देखा कि इन दोनोंमेंसे कोई भी नहीं हटता है और दोनों पक्ष बलवान् हैं। दोनों भुजबली हैं। तब यदि ये दोनों परस्पर ही युद्ध करें तो ठीक है और दोनों ओरकी सैन्या क्यों व्यर्थ कटे? यह विचार मन्त्रियोंने अपने २ स्वामियोंसे कहा कि आप राजा राजा ही युद्ध करें, व्यर्थ सैन्य कटानेमें कुछ लाभ नहीं है। सो यह विचार दोनोंको पसंद आया, और दोनों अपनी २ सैन्या-ओंको रोककर परस्पर ही युद्ध करना निश्चितकर काका और भतीजे रणक्षेत्रमें आ गये।

वीरदमन बोले—'आओ! हम तुम परस्पर ही लड़ें। सैन्याका संहार क्यों किया जाय?' तब श्रीपालजी ही हर्षित होकर बोले—ऐ काका! अब भी तुम्हें समझाकर कहता हूँ कि तुम दूसरेका राज्य छोड़ दो, इसीमें तुम्हारी भलाई है, क्योंकि मै तुमको पिताके समान जानता हूँ। सो क्या मैं अपने ही हाथसे तुम्हें मारूँ? यह सुनकर वीरदमन क्रोधकर बोले—"अरे श्रीपाल! तू [illegible] युद्धका व्यवहार मालूम नहीं है। जब रण-

क्षेत्रमें आ ही गये तो किसका पिता और किसका पुत्र ? किसका भाई ? और किसका मित्र ? यहाँ डरनेसे काम नहीं चलता है। मैंने पहिले ही तुझे समझाया था, परन्तु तू न माना और लड़कपन किया। सो अब क्या मेरे हाथसे तू बचकर जा सकेगा ? कभी नहीं, कभी नहीं।" तब कोटीभट्टको भी क्रोध आगया। वे बोले—"रे वीरदमन ! तेरे बराबर अज्ञानी कोई नहीं है, जो पराये राजपर गर्व रहा है। देखो, कहा है कि जो परस्त्रीसे प्रीति करता है, जो मुँहसे गाली निकालता है, जो पराधीन भोजन करता है, जो ज्ञानरहित तप करता है, पराये धनपर सुख भोगता है, साँपसे मित्रता करता है, स्त्रीपर भरोसा रखता है, अपने मनकी बात सबसे कहता है, धनी होकर पराधीन रहता है, विना द्रव्य दानी बनता है, वेश्यासे प्रीति करता है, सो किसी न किसी दिन बहुत धोखा खाता है। जो कुशील सेवन करता है, भंग पीकर बुद्धिमान् बनता है, पंडित होकर ठौर ठौर वादविवाद करता है, हंस मानसरोवर छोड़ देता है, वेश्या लज्जावती बन जाती है, जुवामें सच बोलता है, दूसरेकी संपत्तिपर ललचाता है, उससे अधिक मूर्ख संसारमें कौन है ?"

वीरदमनको उक्त नीति सुनकर लज्जा तो अवश्य हुई, परन्तु वह उस समय लाचार था। वीर पुरुष युद्धसे नहीं हटते हैं, इस लिये उसने धनुष उठा लिया, और ललकारकर बोला—"बस, रहने दे तेरी चतुराई। अब कायरीसे बातें बनानेका समय नहीं है। यदि कुछ भी बाहुबली है, तो साम्हने आ।" तब तो श्रीपालसे नहीं रहा गया। कानके पास तक धनुष खेंचकर सन्मुख

हो गया। सो जैसे अर्जुन और कर्ण, रावण और लक्ष्मण, तथा भरत और बाहुबलीका परस्पर युद्ध हुआ था, वैसा ही होने लगा। पश्चात् जब हथियारोंसे बहुत युद्ध हुआ और कोई किसीको न हरा सका, तब शस्त्र छोडकर मल्लयुद्ध करने लगे, सो बहुत समय तो योंही लिपटते और लौटते रहे, परन्तु जब बहुत देर हो गई, तब श्रीपालने वीरदमनको दोनों पाँव पकड़के उठा लिया और चाहा कि पृथ्वीपर दे मारे, परन्तु दया आ गई, इसलिये धीरेसे पृथ्वीपर लिटा दिया। आकाशसे "जय, जय" शब्द होने लगा। वीरोंने श्रीपालके गलेमें जयमाल पहिनाई और बोले—"राजन्! तुम दयालु हो।" इस प्रकार श्रीपालने वीरदमनको छोड़ दिया। तब वीरदमन बोले—"हे पुत्र! यह ले तू अपना राज्य सम्हाल। मैंने तेरा बल देखा। तू यथार्थमें महाबली है। हमारे इस वंशमें तेरे जैसे शूरवीर ही होने चाहिये।" तब श्रीपाल बोले—"हे तात! सब आपका ही प्रशाद है। आपकी आज्ञा हो सो करूं।"

यह सुन वीरदमन बोले—"पुत्र! ठीक है, अब मेरा विचार है कि तुझे राज्य देकर मैं जिनदीक्षा लूं जिससे भववास मिटे।" पश्चात् आनन्दभेरी बजने लगी, सबका भय दूर हुआ। जहाँ तहाँ मंगल गान होने लगे। वीरदमनने श्रीपालका राज्याभिषेक कराकर पुन. राज्यपद दिया; और बोले—"हे धीरवीर? अब तुम सुखसे चिरकाल तक राज्य करो, और नीति व न्यायपूर्वक पुत्रवत प्रजाका पालन करो। दुःखी दरिद्रियोंपर दया भाव रखो। और मेरे ऊपर क्षमा करो। जो कुछ भी मुझसे तुम्हारे विरुद्ध

हुआ है, सो सब भूल जाओ। मैं जिनदीक्षारूपी नावमें बैठकर भवसागरको तिरूंगा।"

इस तरह वीरदमन अपने भतीजे श्रीपालको राज्य देकर आप वनमें गये और वस्त्राभूषण उतारकर पंचमुष्टिसे केशोंका लोंच किया। राग द्वेषादि चौदह अंतरंग और क्षेत्र वास्तु आदि दश बाह्य ऐसे चौबीस प्रकार परिग्रहको त्यागकर पंच महाव्रत धारण किये, और घोर तपश्चरणद्वारा चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया, और बहुत जीवोंको धर्मोपदेश दे उन्हें संसारसे पार किया। पश्चात् शेष अघाती कर्मोंको भी आयुके अंतसमय निःशेष कर परमधाम—मोक्षको प्राप्त किया।

पुण्य बड़ो संसारमें, पुण्य करो नर नार।
पुण्य योग श्रीपालजी; पाई लक्ष्मी अपार॥ १॥
वीरदमन मुक्तहिं गये, पुण्य योगतें सार।
आठ सहस रानीनकी, मैना भई पटनार॥ २॥
पुण्य योग जिय सुख लहै, पुण्य योग शिवद्वार।
"दीपचन्द' निज संग्रहो, पुण्य पदारथ सार॥ ३॥

(२३) श्रीपालका राज्य करना।

अशुभ कर्म भयो दूर सब, शुभ प्रगट्यो भरपूर।
राज्य करें बिलसे विभव; श्रीपाल बलशूर॥
कीनों यश भुवि लोकमें; दुर्जनके उर शाल।
सकल जीव रक्षा करी, महाराज श्रीपाल॥

इस प्रकार राजा श्रीपाल आठ हजार रानियों सहित इन्द्रके समान सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे। देशोंदेशमें इनकी प्रख्याति बढ़ गई। अनेक देशोंके बड़े २ राजा इनके आज्ञाकारी

हो गये। जो राजा लोग अनेक द्वीपों और देशोंसे आये थे, सो सबको यथायोग्य सन्मानपूर्वक आज्ञाकारी बनाकर विदा किये। प्रजाको प्रीतिसे पुत्रवत् पालन करने लगे। नित्य प्रति चार प्रकारके संघको चारों प्रकारके दान भक्तिभावसे देने लगे। दु:खित तो कोई नगरमें तो क्या राज्यभरमें कठिनतासे मिलता था। इत्यादि राज्यविभव सब कुछ था, और इनको किसी बातकी कमी नहीं थी, तो भी ये सब सुखके मूल जिनधर्मको नहीं भूलते थे। नित्य नियमानुसार वर्धमान रूपसे षट् आवश्यकों—देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय संयम, तप और दानमें यथेष्ट प्रवृत्ति करते थे।

इस तरह राज्य करते हुए श्रीपालका सुखसे समय जाता था, सो कितनेक दिन बाद मैनासुंदरीको गर्भ रहा। उसे अनेक प्रकारके शुभ दोहले उत्पन्न हुए और श्रीपालने उन सबको पूर्ण किये। इस तरह जब दश महिने हो गये, तब शुभ घड़ी मुहूर्तमें चन्द्रमाके समान उज्वल कान्तिका धारी पुत्र हुआ। पुत्र जन्मसे सर्व कुटुम्बको अत्यानन्द हुआ, और पुत्रजन्मोत्सवमें बहुत द्रव्य खर्च किया गया। याचक जन निहालकर दिये गये। पश्चात् ज्योतिषीको बुलाकर ग्रहादिका व्योरा पूछा, तो उसने बहुत सराहना करके कहा कि यह पुत्र उत्तम लक्षणोंवाला है, इसका नाम धनपाल है।

इस तरह दूसरा महीपाल तीसरा देवरथ, और चौथा महारथ ये चार पुत्र मैनासुदरीके और हुए। रयनमंजूषाके सात हुए, गुणमालाके पांच पुत्र हुए और सब स्त्रियोंसे एक, किसीके दो इस प्रकार महाबली धीरवीर गुणवान् कुल बारह हजार पुत्र हुए। वे नित्य प्रति दोयजके चन्द्रमाके समान बढ़ने लगे।

अहा ! देखो, धर्मका प्रभाव ! इससे क्या नहीं हो सक्ता है ? श्रीपालजी धर्मके प्रसादसे सुख पूर्वक काल व्यतीत करते थे। एक दिन श्रीपालजी सिंहासनपर बैठे थे, पास ही बाईं ओर मैनासुंदरी बैठी थी। बन्दीजन विरद बखान कर रहे थे। सेवकजन चमर ढोर रहे थे। नृत्यकारिणी नृत्य कर रही थीं। गीत वादित्र बज रहे थे, विनोद हो रहा था। कविजन पुराण पढ रहे थे। चारों ओर कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, कपूर आदि पदार्थोंकी सुगंधि फैल रही थी। अबीर गुलाल उड़ रहा था। पान, सुपारी, इला-यची, जावित्री, लौंग आदि बँट रहे थे। कहीं आम, जाम, सीताफल, नारियल, केला आदि फल और किसमिस, द्राक्ष, छुहारा, चिरौंजी, काजू, पिस्ता, अखरोट, अंगूर आदि मेवे बँट रहे थे। इस प्रकार राजा क्रीड़ा कर रहा था कि वनमाली आया, और उसने नमस्कारकर छह ऋतुके फलफूल राजाको भेट किये और नम्र हो बोला—

"हे स्वामिन् ! इस नगरके वनमें समीप ही श्रीमुनिराजका आगमन हुआ है जिनके प्रभावसे सब ऋतुओंके फलफूल साथ ही फले और फूल गये हैं। सूखे सरोवर भर गये हैं। जाति-विरोधी जीव परस्पर वैर छोडकर विचर रहे हैं। गायका बच्चा सिंहिनीके स्तनसे लग जाता है। साँप नौलेको खिलाता है। चूहा बिल्लीसे क्रीडा करता है। चहुँ ओर शिकारियोंको शिकार भी नहीं मिलती है। हे नाथ ! ऐसा अतिशय हो रहा है। यह सुन-कर श्रीपालजी सिंहासनसे उतरे, और वहींसे प्रथम ही सात पद चलकर परोक्ष रीतिसे नमस्कार किया और वस्त्राभूषण जो पहिरे

थे सो सब उतारकर वनमालीको दे दिये, और भी वहुत इनाम वनमालीको दिया। पश्चात् नगरमें आनन्दभेरी बजवा दी कि सब लोग वंदनाको चलैं। नगरके बाहर वनमें श्रीमहामुनिराज आये हैं। पश्चात् अपनी चतुरंग सैन्या सजा कर बड़े उत्साहसे प्रफुल्लित चित्त हो रनवास सहित स्वजन, परजन, पुरजनोंको साथ लेकर वंदनाको चले। सो कुछ ही समयमें उद्यानमें पहुँचे, वहाँकी शोभा देखकर मन आनन्दित होता था। मंद सुगंधि पवन चल रही थी। मानों वसन्तऋतु ही हो। जब निकट पहुंचे तो श्रीपालजी वाहनसे उतरकर यहाँ वहाँ देखने लगे, तो कुछ ही दूर सन्मुख अशोक वृक्षके नीचे सब दुःखोंके नाश करनेवाले महामुनिराज विराजमान थे, सो देखते ही श्रीपालके हर्षकी सीमा न रही। वे श्रीगुरुको नमस्कारकर तीन प्रदक्षिणा देकर स्तुति करने लगे—

धन्य धन्य तुम श्रीमुनिराज। भवजल तारन तरन जहाज॥
एक परम पद जाने सोय। चेतन गुण आराधे जोय॥
राग द्वेष नहिं जाके चित्त। समय केवल पाले नित्त॥
तीन गुप्ति पालन परमत्थ। रत्नत्रय धारण समरत्थ॥
तीन शल्य मेंटन शिवकंत। ज्ञान धरण गुण वल्लभ संत॥
भवजल तारण तरण जहाज। पच महाव्रत धर मुनिराज॥
मकरध्वज खंडो धर भाव। छहों द्रव्य भाषण गुण राव॥
आठ कर्म माया मद हर्न। आठ सिद्ध गुण धारण धर्म॥
नव विधि ब्रह्मचर्य प्रतिपाल। दश लक्षण गुण धरन दयाल॥
एकादश प्रतिमा जिय जाहि। द्वादशांग भाषण जो आहि॥
तेरा विधि चारित्र प्रमाण। पाले जो व्रत धरन सुजान॥
सहें परीषह बाईस सोय। इनके शत्रु मित्र सम दोय॥
कहाँ तक कहूँ आप गुण माल। द्वय कर जोड़ नमे श्रीपाल॥

इस तरह सब पुरजन और रनवास सहित श्रीपाल स्तुति करके श्रीगुरुके चरणकमलके समीप ही हर्षित होकर बैठे। और भी सब लोग यथायोग्य स्थानपर बैठे। श्रीगुरुने धर्मवृद्धि दी। पश्चात् राजा बोले—"स्वामिन्! कृपाकर मुझे संसारसे पार उतारनेवाले धर्मका उपदेश दीजिये।"

तब श्रीगुरु बोले—"हे राजन्! तुमने यह अच्छा प्रश्न किया। अब ध्यानसे सुनो। वस्तुका जो स्वभाव है, वही धर्म है। सो इस आत्माका स्वभाव शुद्ध चैतन्य, अर्थात् अनंत दर्शन, ज्ञान स्वरूप है और अमूर्तीक है, परन्तु यह अनादि कर्मबंधके कारणसे चतुर्गति रूप संसारमें परिभ्रमण करता हुआ पर्यायबुद्धि हो रहा है। इसलिये इसको परपदार्थोंसे भिन्न, अनंतदर्शन, ज्ञानमयी, सच्चिदानन्द रूप एक अविनाशी अखंड, अक्षय अव्याबाध निरंजन स्वयंबुद्ध परमात्म स्वरूप समयसार निश्चय करना, सो तो सम्यक्दर्शन है। और न्यूनाधिकता तथा संशय विपर्यय और अनध्यवसायादि दोषोंसे रहित जो वस्तुको सूक्ष्म भेदों सहित जानना सो सम्यक्ज्ञान है, और स्वस्वरूपमें लीन हो जाना सो सम्यक्चारित्र है। इस तरह निश्चयरूपसे तो धर्मका स्वरूप यह है। और व्यवहार विना निश्चय होता नहीं है, इसलिये व्यवहारसे सप्त तत्त्वोंका श्रद्धान सो दर्शन अथवा इनका जो कारण सत्यार्थ देव, गुरु और शास्त्रका श्रद्धान सो सम्यक्दर्शन है और निर्दोष जानना सो ज्ञान है, और इनकी प्राप्तिके उपायमें तत्पर होना, सो सम्यक्चारित्र है। सो चारित्र दो प्रकार है—सर्वथा त्यागरूप (मुनिका), और एक देश त्याग रूप (गृहस्थका) पञ्च

महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्तिरूप मुनिका और पञ्च अणुव्रत तथा सप्त शीलरूप श्रावकका होता है। श्रावककी ग्यारह प्रतिमाएँ हैं जिनमें शक्ति अनुसार उत्तरोत्तर कषायोंकी मंदतासे जैसे जैसे त्याग भाव होता जाता है वैसी ही ऊपर ऊपरकी प्रतिमावोंका पालन होता जाता है और मुनिका व्रत बाह्य तो एक ही प्रकार है, परन्तु उत्तर गुणों तथा गुणस्थानोंकी परिपाटीसे अंतरंग भावोंकी अपेक्षा अनेक प्रकार है। इस प्रकार सम्यक् सहित व्रत पाले, और आयुके अन्तमें दर्शन ज्ञान चारित्र और तप इन चार आराधनावों पूर्वक सल्लेखना मरण करे"।

इस प्रकार संक्षिप्तसे धर्मोपदेश दिया। सो सुनकर राजाको परम आनन्द हुआ। पश्चात् श्रीपालजीने विनयपूर्वक पूछा-"हे परम दयालु ज्ञानसूर्य प्रभो! कृपाकर मेरे भवान्तर कहिये, कि किस कर्मके उदयसे मैं कोढी हुआ, किस पुण्य कर्मके उदयसे सिद्धचक्र व्रत लिया, किस कारण समुद्रमें गिरा, किस पुण्यसे तिरकर बाहर निकला, किस कर्मसे भाँड़ोंने मेरा विगोवा किया, किस कारणसे वह मिट गया, और किस कारण मैनासुदरी आदि बहुतसी रूप व गुणवती स्त्रियां और विभूति पाई?" इत्यादि।

---

(३४) श्रीपालके भवान्तर।

श्रीमुनि बोले-"हे राजन्! सुनो, इसी जंबूद्वीपके दक्षिणमें भरतक्षेत्र है, उसके आर्य खंडमें एक रत्नसंचयपुर नामका नगर महारमणीक बन, उपवन, तड़ाग, नदी, कोट, खाई आदि बड़े २ उत्तंग महलोंसे सुसज्जित था। उसका राजा श्रीकंठ विद्याधर

महाबलवान् और चतुरंग सैन्याका स्वामी था। उसके यहाँ सब रानियोंमें प्रधान पट्टरानी श्रीमती थी। सो वह महारूपवती, गुणवती और धर्मपरायणा थी। नित्य प्रति चार संघको भक्तिपूर्वक आहारादिक चार प्रकारके दान देती थी। एक दिन राजा रानी सहित श्रीजिन मंदिर गया और जिनदेवकी स्तुति वंदना करके पीछे फिरा तो वहाँ परम दिगंबर मुनिराजको विराजमान देखकर नमस्कार किया, और समीप बैठा। श्रीगुरुने धर्मवृद्धि दी, और संसारसे पार उतारनेवाले जिन धर्मका उपदेश किया। इससे राजा आदि बहुत लोगोंने यथायोग्य व्रत लिये और अपने २ आवास स्थानोंको आये, और यथायोग्य धर्म पालने लगे। पश्चात् तीव्र मोह कर्मके उदयसे राजाने श्रावकके व्रतोंको छोड दिया, और लक्ष्मी, ऐश्वर्य, रूप, कुल, बल और तरुणावस्थाके मदमें उन्मत्त होकर मिथ्यात्वियोंके बहकानेसे मिथ्यादेव, धर्म और गुरुकी सेवा करने लगा, तथा जैनधर्मका निंदक हो गया। एक दिन वह राजा अपने सातसौ वीरोंको साथ लेकर वनक्रीड़ाको गया था सो वहाँ एक गुफामें बाईस परीषहके सहनेवाले ध्यानारूढ एक मुनिराजको देखा, जिनका शरीर बहुत क्षीण (दुर्बल) हो रहा था, धूलसे भर रहा था और डांस मच्छर आदि लग रहे थे। ऐसे निश्चल विराजमान थे कि जिनके पास सूर्यका उजेला पहुंच भी नहीं सकता था। सो राजाने उन महामुनिको देखकर अपशकुन माना, और 'कोढ़ी है, कोढ़ी है' ऐसा कहकर समुद्रमें गिरवा दिया, परंतु मुनिका मन किंचित् भी चलायमान न हुआ। पश्चात् राजाको कुछ दया उत्पन्न हुई, सो फिर पानीमेंसे मुनिको निकलवा लिया,

और अपने घर आया। पश्चात् कितने दिनोंके राजा फिरसे वन-क्रीड़ाको गया, और साम्हने एक क्षीण शरीर, धीरवीर, परम तत्व ज्ञानी मुनिको आते हुए देखा। वे रत्नत्रयके धारी महामुनिराज एक मासके उपवासके अनन्तर नगरकी ओर पारणा (भिक्षा) के लिये जा रहे थे। सो राजाने क्रोधित होकर मुनिसे कहा—"अरे निर्लज्ज! वेशरम! तूने लज्जाको कहाँ छोड़ दी है, जो नंगा फिर रहा है? मैला शरीर, भयावना रूप बनाकर डोलता है। 'मारो! मारो! अभी इसका सिर काट लो' ऐसा कह खड्ग लेकर उठा और मुनिको बड़ा उपसर्ग तथा हास्य किया, पश्चात् कुछ दया उत्पन्न हुई, तब उनको छोड़कर अपने महलको चला आया। ऐसे मुनिको वारंवार उपसर्ग करनेसे उसने बहुत पाप बाँधा। एक दिन किसी पुरुषने आकर यह सब मुनियोंके उपसर्ग करनेका समाचार रानी श्रीमतीसे कह दिया, सो सुनते ही रानी-को बडा दुःख हुआ। वह बार २ सोचने लगी कि 'हे प्रभो! मेरा कैसा अशुभ कर्म उदय आया, जो ऐसा पाप करनेवाला भर्तार मुझे मिला? कर्मकी बड़ी विचित्र गति है। वह इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग कराया करता है। सो अब इसमें किसको दोष दूँ? मैंने जैसा पूर्वमें किया था वैसा पाया।"

इस तरह रानीने बहुत कुछ अपने कर्मोंकी निंदा गर्हा की और उदास होकर पलँगपर जा पड़ी। इतनेमें राजा आया और सुना कि रानी उदास पड़ी हैं। तुरंत ही रानीके पास आकर पूछने लगा—"प्रिये! तुम क्यों उदास हो? जो कुछ कारण हो सो मुझसे कहो। ऐसी कौन बात अलभ्य है, जो मैं प्राप्त

नहीं कर सकता हूँ ?" परंतु रानीने कुछ भी उत्तर न दिया। वैसी ही मुरझाये हुए फूलके समान रह गई। उसे कुछ भी सुध न रही। तब एक दासी बोली—" हे नरनाथ ! आपने श्रावकके व्रत छोड दिये। और मुनिकी निंदा की। उन्हें पानीमें गिरवा दिया, और बहुत उपसर्ग किया है। सो सब समाचार किसीने आकर रानीसे कह दिये हैं। इसीसे वे दुःखित होकर मुरझाकर पड़रही हैं "। राजा यह बात सुन लज्जित होकर अपनी भूल विचारने लगा। पश्चात् मधुर व कोमल वचनोंसे रानीको समझाने लगा—" हे प्रिये ! मुझसे निसंदेह बड़ी भूल हुई। यथार्थमें मैंने मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मिथ्यागुरु, धर्मको सेवन किया और उसीकी कुशिक्षासे सुमतिको छोड़कर कुमतिको ग्रहण किया। मैं महापापी हूँ। मैंने मिथ्या अभिमानके वश होकर बड़े २ अनर्थ किये हैं। मैं अपने आप ही अंधकूपमें गिर गया। प्रिये ! अब मुझे नरकपंथसे बचाओ। मैं अपने किये कर्मोंकी निंदा करता हूँ, उनपर पश्चात्ताप करता हूँ और उनसे छूटनेकी इच्छासे श्रीजिनदेवसे बार २ प्रार्थना करता हूँ।" तब रानी दयावंत हो बोली—" महाराज ! आपने धर्मकथाको छोडकर मिथ्यात्व सेवन किया। यह भला न किया। आपने धर्माधर्मकी पहिचान बिना किये ही मुनिराजको कष्ट दिया। देखो, धर्मशास्त्रमें कहा है कि जो कोई जिनशासनके व्रतोंकी, जिनगुरु, जिनबिंब व जिनधर्मकी निंदा करता है, सो निश्चयसे नरक जाता है। वहाँपर मारण, ताडन, छेदन, भेदन, शुली रोहणादि दुःखोंको भोगता है। वहाँ कोई शुलीपर चढ़ाते हैं, घाणीमें पेलते हैं, संडासीसे मुख

फाड़कर ताँबा, शीशा गला गलाकर पिलाते हैं। लोहेकी पुतली लाल २ गरमकर शरीरसे भिड़ा देते हैं, इत्यादि नाना प्रकारके दुःख भोगना पड़ते हैं। इस लिये हे स्वामिन्! अब कोई पुण्यके उदयसे यदि आपको अपने अशुभ कृत्योंसे पश्चात्ताप हुआ है, तो श्रीमुनि-के पास जाकर जिनव्रत लो जिससे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा हो।"

यह सुनकर राजा, रानीके कहे अनुसार जिन मंदिरमें गया और प्रथम ही जिनदेवकी स्तुति की। पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कार करके बैठा और बोला—"हे दीनदयालु प्रभो! मैंने बड़ा पाप किया है। अब आपके शरणमें आया हूँ। सो मुझे अब नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये"। तब श्रीगुरुने धर्मका स्वरूप समझाकर कहा—राजन्! तू सम्यग्दर्शन पूर्वक श्री सिद्धचक्रका व्रत पाल, इससे तेरे अशुभ कर्मका क्षय होगा, और व्रतकी विधि बताई। सो राजाने मिथ्यात्वको त्यागकर सिद्धचक्र व्रत स्वीकार किया, और सम्यक्त्व ग्रहण किया, तथा पंच अणुव्रत और सप्त शील (तीन गुणव्रत+चार शिक्षाव्रत) अंगीकार किये। फिर अपने स्थानको आया और उसी समयसे धर्मध्यानमें सावधान हो विधिपूर्वक व्रत पालने लगा। नित्यप्रति जिनेन्द्र देवकी अष्ट प्रकारसे पूजा करता, दान, देता था। जब आठ वर्ष पूर्ण हो गये, तब उसने विधिपूर्वक भाव सहित उद्यापन किया, और अंत समयमें सन्यासमरण कर स्वर्गमें जाकर देव हुआ, और रानी श्रीमती भी सन्यासमरण कर स्वर्गमें देवी हुई। और भी सब यथायोग्य व्रतके प्रभावसे मरण कर अपने २ कर्मानुसार उत्तम गतिको प्राप्त हुए। सो वह (राजा श्रीकंठका जीव) स्वर्गसे चयकर तू श्रीपाल हुआ है और

रानी श्रीमतीका जीव चयकर मैनासुंदरी हुई है, इस लिये हे राजन्! तूने जो सातसौ वीरों सहित मुनिराजकी 'कोढ़ी २' कहकर ग्लानि की थी, उसीके प्रभावसे तू उन सब सखों सहित कोढ़ी हुआ। और मुनिको पानीमें गिराया, उससे तू भी सागरमें गिरा। फिर दयालु होकर निकाल लिया, इसीसे तू भी तिरकर निकल आया। तूने मुनिकी 'भ्रष्ट २' कहकर निंदा की थी, इसीसे भांड़ोंने तेरा अपवाद उडाया। तूने मुनिके मारनेको कहा था, इसीसे तू शूलीके लिये भेजा गया, और दुःख पाया, इसलिये हे राजा! मुनिकी तो क्या किसी भी जीवकी हिंसा दुःखकी देनेवाली होती है, और मुनिघातक तो सातवें नरक जाता है। तूने पूर्वजन्ममें श्रावकके व्रतों सहित सिद्धचक्रका आराधन किया, जिससे यह विभूति पाई, और पूर्व भवके संयोगसे ही श्रीमतीजीके जीव मैनासुंदरी और इस पवित्र सिद्धचक्रव्रतका लाभ हुआ।"

यह सुनकर श्रीपालने मुनि महाराजकी बहुत स्तुति और वंदना की और अपने भवांतरकी कथा सुनकर पापोंसे विशेष भयभीत और धर्ममें दृढ हुआ। पश्चात् श्रीगुरुको नमस्कार कर निज महलोंको आया और पुण्ययोगसे प्राप्त हुए विषयोंको न्यायपूर्वक भोगने लगा, तथा और भी अपने बाहुबलसे अनेक देशोंके अनेक राजाओंको वश किये। इस तरह बहुत दिन तक इन्द्रके समान ऐश्वर्यधारी श्रीपालने इस पृथ्वीपर नीतिपूर्वक राज्य किया। इसके राज्यमें दीन दुःखी कोई भी नहीं मालूम होते थे।

(१५) श्रीपालकी दीक्षा।

एक दिन राजा श्रीपाल सुखासनसे बैठे हुए दिशाओंका अवलोकन कर रहे थे कि उल्कापात हुआ (बिजली चमकी), उसे देखकर वे सोचने लगे–'अरे ! जैसे यह बिजली चमक कर नष्ट हो गई, ऐसे ही एक दिन यह सब मेरा विभव, तन, धन, यौवनादि भी विनश जायँगे। देखो ! संसारमें कुछ भी स्थिर नहीं है। मेरी ही कई अवस्थाएँ बदल गई हैं। अब अचेत रहना योग्य नहीं है। इन विषयोंके छोड़नेके पहिले ही मैं इन्हें छोड़ दूँ, क्योंकि जो इन्हें न छोड़ूँगा तो भी ये नियमसे मुझे छोड़ देंगे। तब मुझे दुःख होगा, और आर्तध्यानसे कुगतिका पात्र हो जाऊँगा।

विश्वमें जो वस्तु उपजी नाश तिनका होयगा।
तू त्याग इनहिं अनित्य लखकर नहीं पीछे रोयगा ॥

(१) इति **अनित्य** भावना।

मृत्युके समय मेरा कोई भी सहाई न होगा। किसके शरण जाऊँगा ? कोई भी बचानेवाला नहीं है।

देव इन्द्र नरेन्द्र खगपति और पशुपति जानिये।
आयु अंतहि मरें सबही शरण किसकी ठानिये ॥

(२) इति **अशरण** भावना।

संसार दुःखरूप जन्म मरणका स्थान है।

पिता मर निज पुत्र होवे पुत्र मर भ्राता सही।
परिवर्तरूपी जगत मांही स्वांग बहु धारे यही ॥

(३) इति **संसार** भावना।

इसमें जीव अनादिकालसे अकेला ही भटकता है।

स्वर्ग नर्कहिं एक जावे राज इक भोगे सही ।
कर्म फल सुखदुःख सब ही अन्यको बांटे नहीं ॥
(४) इति एकत्व भावना ।

कोई किसीका साथी नहीं है ।

देह जब अपना न होवे सेव जिंह नित ठानिये ।
तो अन्य वस्तु प्रतच्छपर हैं कैसे निजकर मानिये ॥
(५) इति अन्यत्व भावना ।

मिथ्यात्वके उदयसे यह इस घृणित शरीरमें लोलुप हुआ विषय सेवन करता है ।

मलमूत्र आदि पुरीषजामें हाड़ मांस सु जानिये ।
घिन देह गेह जु चाम लपटी महां अशुचि बखानिये ॥
(६) इति अशुचि भावना ।

और रागद्वेष करके कर्मोंको उपार्जन करता है ।

मन वचन काय त्रियोग द्वारा भाव चंचल हो रहे ।
तिनसे जु द्रव्यऽरु भाव आश्रव होय मुनिवर यों कहे ॥
(७) इति आश्रव भावना ।

यदि यह मन, वचन, कायको रोक कर अपने आत्मामें लीन हो ।

योगको चंचलपनो रोके जु चतुर बनायके ।
तब कर्म आवत रुकें निश्चय यह सुनो मनलायके ॥
(८) इति संवर भावना ।

व्रत, तप, चारित्र धारण करे ।

व्रत समिति पंच अरु गुप्ति तीनों धर्म दश अरु धारके ।
तप तपें द्वादश सहें परिषह कर्म डारें जारके ॥
(९) इति निर्जरा भावना ।

तो इस अनादि मनुष्याकार लोक, जो तीन भागोंमें (ऊर्ध्व, अधः और मध्य) विभाजित है और ३४३ घन राजूका क्षेत्रफल- वाला है, के भ्रमणसे बच सकता है।

नराकार जु लोक तीनों ऊर्ध्व मध्य पताल हैं।
तिनमें ए जीव अनादिसे भटकें सदा वेहाल हैं॥

(१०) इति लोक भावना।

संसारमें और सब वस्तुएँ मिलना सहज हैं और अनन्त वार मिली भी हैं, परंतु रत्नत्रय ही नहीं मिला है।

विश्वमें सब सुलभ जानो द्रव्य अरु पदवी सही।
कह दीपचन्द्र अनंत भवमें बोधि दुर्लभ है यही॥

(११) इति बोधिदुर्लभ भावना।

सो ऐसे रत्नत्रय धर्मको पाकर यह जीव अवश्य ही संसार भ्रमणसे बच सकता है।'

यांचे सुरतरु देय फल चिंतत चिंता रैन।
विन यांचे विन चिंतवें धर्म सकल सुख दैन॥

(१२) इति धर्म भावना।

इस प्रकार संसारके स्वरूपका विचारकर तुरंत ही वे धीरवीर श्रीपाल अपने ज्येष्ठ पुत्र धनपालको बुलाकर कहने लगे—'हे पुत्र! अब मुझसे राज्य नहीं हो सकता, अब मैं अपनी अनादि कालसे खोई हुई असल सपत्ति (जो स्वात्मलाभ) प्राप्त करूँगा। तुम इस राज्यको सम्हालो"। तब पुत्र बोला—"हे पिता! मै अभी बालक हूँ। मैने निश्चित होकर अपना काल खेलनेमें ही विताया है। राज्यकार्यमें मुझे कुछ भी अनुभव नहीं है। सो यह इतना बड़ा

कार्य मैं कैसे करूँगा ? आपके बिना मुझसे कुछ न हो सकेगा।"

तब राजा बोले-'हे पुत्र! सदासे यही नीति चली आई है कि पिता-का राज्य पुत्र ही करता है, सो तू सब लायक है। फिर क्यों चिंता करता है ? राज्य ले और प्रेमपूर्वक नीतिसे प्रजाको पाल।' सो पुत्र धनपालने आज्ञाप्रमाण राज्य करना स्वीकार किया। तब श्रीपालजीने कुँवर धनपालको राज्यपट्ट दे तिलक कर दिया, और भले प्रकार शिक्षा देकर कहा कि-' हे पुत्र ! अब तुम राजा हुए। यह प्रजा तुम्हारे पुत्रके समान है। 'यथा राजा तथा प्रजा' होती है, इसलिये मिथ्यात्वको सेवन नहीं करना। परधन और परस्त्रिय-पर दृष्टि नहीं डालना। अपना समय व्यर्थ विकथाओंमें नहीं बिताना। इन्द्रियोंको न्याय विरुद्ध प्रवर्तन करनेसे रोकना। जीवमात्रसे प्रीति और दयाभाव रखना। परोपकारमें दत्तचित्त रहना" इत्यादि वचन कहकर आप वनकी ओर चले गये। आपके जाते ही प्रजामें हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे कि अब " चंपापुरकी शोभा गई। अहा ! ये महाबली दयावंत प्रजा पालक महराजा कहाँ चले गये ? जिनके राज्यमें हम लोगोंने शांतिपूर्वक जीवनका आनन्द भोगा। चोर लुच्चे और बदमाशोंका नाम रहा ऐसा भी न सुना। महाराज क्यों चले गये ? क्या हम लोगोंसे उनकी सेवामें कुछ कमी हो गई, या और कोई कारण हुआ ? राजा हम लोगोंको क्यों छोड गये ?" इत्यादि कोई कुछ कोई कुछ कहने लगे। तब राजा धनपालने सबको धैर्य दिया। मैनासुंदरी आदि आठ हजार रानियोंने जब स्वामीके वन जानेका समाचार सुने, तो वे भी साथ हो गईं और माता कुंदप्रभा भी साथ हुईं।

और बहुतसे पुरजन भी साँथ होकर वनमें गये। सो जब कोटीभट्ट वनमें पहुँचे, तो वहाँपर महामुनीश्वर बैठे देखे। उनको नमस्कार कर प्रार्थना की कि 'हे नाथ! मैं अनादिकालका दुःखिया हूँ। सो अब कृपाकर मुझे भवसागरसे निकालिये अर्थात् जिनेश्वरी दीक्षा दीजिये। तब श्रीगुरुने कहा—"हे वत्स! यह तुमने अच्छा विचार किया है। जन्म मरणकी सन्तति इसीसे छूटती है सो तुम प्रसन्नता पूर्वक जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करो। तब श्रीपालने सब जनोंसे क्षमा कराकर तथा आपने भी सबको क्षमा कर दीक्षा लेनेके लिये वस्त्राभूषण उतार कर श्रीगुरुको नमस्कार किया। श्रीगुरुने इन्हें दर्शन ज्ञान चारित्र तप और वीर्य इन पंचाचारों तथा दिगम्बर मुनियोंके २८ मूल गुणों तथा अन्य सब आचरणका भेद समझाकर दीक्षा दी। सो इनके साथ सातसौ वीरोंने दीक्षा ली, और भी बहुतसे स्त्री पुरुषोंने यथाशक्ति व्रत लिये तब रानीं कुंदप्रभा और मैनासुदरी, रयनमंजूषा, गुणमाला, चित्ररेखादि रानियोंने भी आर्यिकाके व्रत लिये।

---

(३६) श्रीपालको केवलज्ञान।

राजा श्रीपाल दीक्षा लेकर बाईस परीषहोंको सहते, दुद्धर तप करते, तेरा प्रकार चरित्रको पालते, और देश विदेशोंमें भव्य जीवोंको सबोधन करते हुए कुछ काल तक विचरते रहे 'तपसे शरीर क्षीण हो गया। कभी गिरि, कभी कंदरा कभी सरोवर तट और कभी झाड़के नीचे ध्यान लगाते। शीत उष्णादि परीषह तथा चेतन अचेतन वस्तुवोंकृत घोर उपसर्गोको सहते तपश्चरण करने लगे। सो कुछेक काल बाद घातिया कर्मोका क्षय होते ही केवलज्ञान

प्रगट हुआ। उस समय देवोंका आसन कंपायमान हुआ, सो इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर गंधकुटीकी रचना की और सुर नर विद्याधरोंने मिलकर प्रभुकी स्तुति कर केवलज्ञानका उत्सव किया।

इस प्रकार वे श्रीपालस्वामी अपने प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा लोकालोकके समस्त पदार्थोंको हस्तरेखावत देखने जाननेवाले बहुत कालतक भव्य जीवोंको धर्मका उपदेश करते रहे। पश्चात् आयु कर्मके अंतमें शेष अघातिया कर्मोंका भी नाश कर एक समय मात्रमें परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त हुए, और सम्यक्त्वादि आठ तथा अनन्त गुणोंको प्राप्त कर संसार संतति (जरा, मरण, जन्म) का नाश कर अविनाशी पद प्राप्त किया। धन्य है वे पुरुष, जो इस भवजलको शोषण कर परमात्म पद प्राप्त करें।

सिद्धचक्र व्रत प्रगट कर, पद महाव्रत मांहि।
श्रीपाल मुकतहिं गये, भव दुःख सकल विछांह ॥
सिद्धचक्र व्रत धन्य है, धन पालक श्रीपाल।
फल पायो तिन व्रतको, 'दीप' नवावत भाल ॥

और मैनासुंदरी आर्यिकाने भी घोर तप किया। सो अंतमें सन्यास मरण कर सोलहवें स्वर्गमें स्त्री लिंग छेदकर बाईस सागर आयुका धारी देव हुआ। वहाँसे चय मोक्ष जावेगा। कुन्दप्रभा रानीने भी तपके योगसे सन्यासमरण कर सोलहवें स्वर्गमें देव पर्याय पाई। तथा रयनमंजूषा आदि अन्य स्त्री तथा पुरुषोंने भी जैसा जैसा तप किया उसके अनुसार स्वर्गादि शुभ गतिको प्राप्त हुए।

इस प्रकार हे राजा श्रेणिक! श्रीपालजीका चरित्र और सिद्धचक्र व्रतका फल तुमसे कहा। ऐसा श्री गौतमस्वामीके मुखसे

सिद्धचक्र व्रतका फल (श्रीपालका चरित्र) सुनकर सम्पूर्ण सभाको अत्यानन्द हुआ। देखो, जिनधर्म और इस व्रतकी महिमा, कि कहाँ तो कोढ़ी श्रीपाल, और कहाँ आठ दिनमें कोढ दूर होकर कामदेव रूप होना, और सागर तिरना, लक्ष चोरोंको बाँधना तथा और भी बड़े २ आश्चर्य जैसे कार्य करना। आठ हजार रानियों और बड़ी इन्द्रके समान विभूतिका स्वामी होना। इस प्रकार मनुष्य भवमें यश, कीर्ति और सुखोंको भोगकर अन्तमें सकल कर्मोंका नाशकर अविनाशी पदका प्राप्त होना। इस लिये जो कोई भव्य जीव जिनधर्मको धारण कर मन, वचन, कायसे व्रतोंको पालन करते हैं वे भी इस प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं।

सर्व धर्मको सार है सम्यक दर्शन ज्ञान।
अरु सम्यक चारित्र मिल; यही मोक्ष मगजान॥
कर विशुद्धि या मगलगे जो नर चतुर सुजान।
सो सुरनर सुख भोगके; अन्त लहे निर्वान॥
जो नर बाँचे भावसे सुने सुनावे सार।
मन वाछित सुख सो लहे, अरु पावे भव पार॥
पच परम पद पद प्रणमि सारस्वती उर धार।
सरल देश भापा करी; पद्य ग्रन्थ अनुसार॥
तीर्थंकर[२४] भज शल्य[३] तज; ज्ञेय पदार्थ[९] विचार।
ज्येष्ठ कृष्ण ग्यारस करी; कथा पूर्ण सुखकार॥
शब्द भेद जानो नहीं, पढो न शास्त्र पुरान।
न्यूनाधिकता होय जो, क्षमा करो बुधवान
नरसिंहपुर है जन्म थल; जाति जैन परवार।
'दीपचन्द' वर्णी करी, भाषा बुधि अनुसार॥